अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रांति का संदेशवाहक

वार्षिक मूल्य ५) 卐 सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार 卐 एक प्रति २ आना

वर्ष–३, अंक–२६ 卐 राजघाट, काशी 卐 शुक्रवार, २९ मार्च, '५७

ग्रामदान का हेतु

ग्रामदान-आंदोलन लोगों को अपना जीवन निष्काम बनाने की प्रेरणा देता है। आज हर एक किसान काम तो करता है, पर कहता है कि पेट के लिए कर रहा हूँ! ग्रामदान वाले गाँवों में भी किसान काम तो करेगा, पर वह यह नहीं कहेगा कि पेट के लिए काम कर रहा हूँ। वह कहेगा कि गांव के लिए काम कर रहा हूँ। पेट के लिए उसको खाना भी चाहिए। पर घोडे से काम लेते हैं, तो उसको भी खाना खिलाना पड़ता है। वैसे ही यह शरीर काम के लिए एक घोड़ा ही है। काम के लिए वह खायेगा। बाबा गाँव-गाँव में घूम कर विचार समझाता है, पर उसने अपना खाना नहीं छोड़ा है! पर बाबा खाने के लिए नहीं घूमता, घूमने के लिए खाता है! आज किसान खाने के लिए काम करता है। लेकिन ग्रामदान में किसान काम के लिए, सेवा के लिए खायेगा। उद्देश्य होगा, सेवा का और सेवा के लिए ही खायेगा। दोनों शख्स खाते हैं, दोनों सेवा चाहते हैं। पर एक खाने के लिए सेवा करता है, दूसरा सेवा के लिए खाता है!

—विनोबा

क्रांति-तीर्थ कोरापुट और क्रांति की अनोखी प्रक्रिया!

(दादा धर्माधिकारी)

मैं यहाँ आप लोगों के ग्रामदान के इस पुण्यक्षेत्र के दर्शन के लिए आया हूँ। दुनिया में क्रांति के तीर्थ ऐसे ही अप्रसिद्ध होते हैं। जिस अमेरिका में लोकशाही का आरंभ हुआ, वहाँ जिन छोटे-छोटे गाँवों में क्रांति हुई, उनका नाम तक आज कोई नहीं जानता। जो लोग थोड़ा-बहुत इतिहास पढ़ते हैं, सिर्फ वे ही जानते हैं कि अमेरिका की क्रांति का आरंभ कहाँ से हुआ था। इसी तरह रूस की क्रांति की बात है। वहाँ शुरुआत में कम्युनिस्ट कहाँ रहते थे, क्रांति का आरम्भ कहाँ से हुआ, ये सारी बातें, जो इतिहास पढ़ते हैं, वे ही जानते हैं। चीन का उदाहरण आपके और हमारे लिए ज्यादा नजदीक का और ज्यादा उपयुक्त है। चीन देश में जिसने क्रांति की, उस महापुरुष का नाम है, माउत्से-तुंग। पहले यह ख्याल था कि क्रांति पढ़े-लिखे लोग, विद्यार्थी, बाबू लोग या शहरों के कारखानों में काम करने वाले मजदूर ही कर सकते हैं। रूस में सबसे पहले लेनिन को यह अनुभव हुआ कि क्रांति में जब तक किसान शामिल नहीं होते हैं, पूर्व में क्रांति नहीं हो सकती। परन्तु उसके बाद भी माउत्से ने यह कोशिश की कि शहरों में क्रांति की आग लगा दें। उसको अनुभव यह आया कि एशिया में और चीन देश में क्रांति होगी, तो किसानों की ही होगी, नहीं तो बिलकुल नहीं होगी। उसका अपना छोटा-सा गाँव था। वहाँ वह शहर छोड़ कर चला गया और उसने चीन की क्रांति का वहाँ से आरंभ किया। अब उस गाँव का नाम मुझे भी मालूम नहीं है, जो आपके सामने ज्ञान बघार रहा है! क्रांति के तीर्थ ऐसे ही अप्रसिद्ध होते हैं।

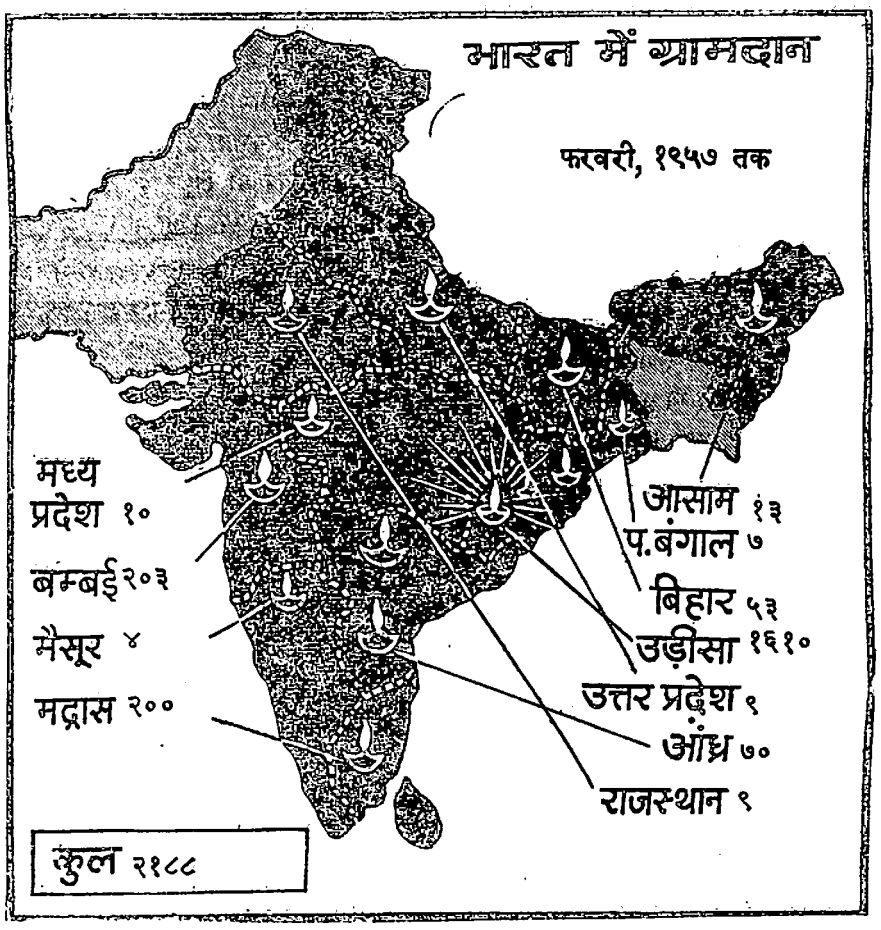

अद्वितीय कोरापुट

दुनिया में एक नयी तरह की क्रांति का तीर्थ यह कोरापुट का इलाका है, जो आपके उत्कल में है। गांधीजी के जमाने में अहिंसात्मक आंदोलन का आरंभ चंपारण में हुआ, जिसका नाम तक पहले कोई नहीं जानता था। लेकिन आज दुनिया में जो कोई भारतवर्ष का इतिहास पढ़ना चाहता है, उसको चंपारण का नाम जरूर पढ़ना पड़ेगा। दुनिया के इतिहास में आपके इस कोरापुट का भी नाम केवल सोने के अक्षरों में ही नहीं लिखा जाने वाला है, जीवित अक्षरों में, मनुष्य के प्राणों की भावनाओं से लिखा जाने वाला है। दुनिया में जगन्नाथपुरी जैसे बहुत से तीर्थ हैं। हीराकुंड जैसे छोटे-बड़े बहुत से स्थान भी हैं, लेकिन कोरापुट एक ही है, अद्वितीय है। इसलिए मैं आप लोगों को बधाई देने के लिए, अभिनन्दन करने के लिए आया हूँ। नव बाबू ने आपसे कहा कि मैं यहाँ आ सका, यह आप लोगों का बड़ा सौभाग्य है! लेकिन सौभाग्य सिर्फ आपका ही रहे और मेरा न रहे, तो मैं नुकसान में रह जाऊँगा! इसलिए जहाँ मेरा सौभाग्य हो, वहीं मैं जाऊँगा, उतनी अकल तो मुझमें है।

जमीन सबकी हो, यह दुनिया भर के सारे क्रांतिकारियों ने आज तक कहा। लेकिन कुछ लोगों ने कहा कि जमीन जबरदस्ती से छीन कर बाँटनी होगी, तो दूसरे कुछ लोगों ने कहा कि कानून से जमीन बाँटनी होगी। दुनिया के इतिहास में कोरापुट पहला क्षेत्र है, जिसने यह कहा कि जमीन न जबरदस्ती बाँटने की जरूरत है, न कानून से। जहाँ इन्सान है और दिमाग है, वहाँ जमीन अपने से ही बाँटी जायगी। जो अकल से काम करते हैं, उनको मनुष्य कहते हैं। जो जबरदस्ती से काम करते हैं, उनको हैवान या पशु कहते हैं। वैसा ही किसानों में भी फर्क है। जो किसान अपनी मर्जी से खेत जोतता है, चाहे वह किसी की भी मालकियत का हो, वह मनुष्य है और जो दूसरों की मर्जी से खेत जोतता हो, वह दो पैरों वाला जानवर है। आप लोगों ने मनुष्य को मनुष्य बनाने कीतिक्र का आरंभ किया। इससे बड़ा और कौनसा गौरव हो सकता है?

हमारी क्रांति कैसी होगी?

एक अस्सी साल का बूढ़ा था। अंधा भी था, निर्धन भी। लोगों ने उससे कहा, "तू अगर परमेश्वर की प्रार्थना और उसकी भक्ति करेगा, तो वे तुझ पर प्रसन्न हो जायेंगे। फिर तेरा दुर्भाग्य नहीं रहेगा।" बूढ़े ने भगवान् की खूब प्रार्थना और भक्ति की। आखिर भगवान् प्रसन्न हुए। भगवान् ने कहा, "तू जो माँगेगा, सो वरदान दूँगा, लेकिन वरदान एक ही माँग सकता है।" भगवान् कृपाशील हैं, लेकिन मनुष्य की परीक्षा किये बिना वह कृपा नहीं करता। रवि ठाकुर ने कहा है

www.vinoba.in

कि ईश्वर कृपालु है, लेकिन वह कृपा-कठोर है। तो, वरदान के साथ शर्त लगायी गयी कि एक ही वरदान माँगा जाय। बूढ़ा बड़ा ही अक्लमंद और चतुर था। गांधी-विनोबा जैसा ही था! उसने भगवान् से कहा कि "भगवान्! मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि मैं अपने पोते को सोने की थाली में भोजन करते हुए, अपनी आँखों से देखूँ।" अस्सी साल का था, पर जवानी और उम्र माँग ली! शादी नहीं हुई थी, तो पोते तक संतान माँग ली! निर्धन था, तो सोने की थाली माँग ली! अंधा था, तो आँखें माँग ली। विनोबा कहता है कि क्रांति की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि एक ही प्रकिया से बहुत से सवाल हल हो जायँ!

हमको इस देश में दुर्भिक्ष का निवारण करना है, इसलिए उत्पादन बढ़ाना चाहिए, यह एक समस्या। दूसरी समस्या है: जो अनुत्पादक हैं, मेहनत नहीं करते, काम नहीं करते, उनके हाथ में उत्पादन के साधन नहीं होने चाहिए। तीसरी समस्या है, उत्पादन के साधन किसी एक आदमी के हाथ में होने ही नहीं चाहिए, और चौथी समस्या यह है, जो सबसे बड़ी बात है कि ये सवाल हल करने में इन्सान की इन्सानियत कम नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह बढ़नी चाहिए।

आप थोड़ी देर के लिए मान लीजिये कि मैं आपके घर आया। लोग पूछते हैं कि आपके घर कौन आया है? आप कहते हैं: "दादा धर्माधिकारी, जो बड़ा मशहूर आदमी है।" दो दिन के बाद आपके और आपकी पत्नी के बीच मैं लड़ाई करवा देता हूँ! तीन दिन के बाद आपके और आपके लड़के के भी बीच लड़ाई करवा देता हूँ। आप कहेंगे, "नवबाबू, आप किसको ले आये थे? वह मेहमान नहीं था, शैतान था! वह हम सबमें लड़ाई करवाता था।" उसके बाद मैं दूसरे के घर जाता हूँ। वहाँ दो भाइयों की लड़ाई मिटा देता हूँ। पति-पत्नी का जो झगड़ा चलता था, वह भी किसी तरह सुलझा देता हूँ! घर का लड़का घर छोड़ कर भाग गया था, उसको भी घर लौटा लाता हूँ। आप नवबाबू को कहते हैं, "आप मेहमान क्या लाये थे, वह तो भगवान् था भगवान्! उसने हमारी सब लड़ाइयाँ खत्म कर डालीं।" जो आदमी को आदमी से लड़ाता है, उसका नाम शैतान है; जो आदमी को आदमी से मिलाता है, उसका नाम भगवान् है।

इसलिए क्रांति ऐसी होनी चाहिए कि जो मनुष्य को मनुष्य से मिलायेगी, लड़ायेगी नहीं।

मनुष्य को मनुष्य से लड़ाने वाली चीजों में सबसे भयंकर चीज है—पैसा। हमारा एक मित्र है। पैसा खूब कमाता है। हम भूदान में आ गये हैं, तो बिलकुल फाक़ामस्त बन गये हैं। हमने उनसे एक दफा कहा कि हमको कुछ पैसे उधार चाहिए, बाद में लौटा देंगे। कहने लगा, "हम आपस-आपस में लेनदेन नहीं करते हैं।" मैंने कहा, "ऐसा क्यों भाई? दूसरे आदमी को तो पैसा देते हो और नजदीक के आदमी को नहीं देते हो, तो क्या हम तुम्हारे दुश्मन हैं?" कहने लगा कि "नहीं भाई, ऐसा नहीं। अगर दोस्त को भी पैसा दे दिया जाय, तो वह भी दुश्मन बन जाता है। इसलिए जिससे दोस्ती रखनी हो, उसके साथ पैसे का व्यवहार नहीं करना चाहिए।"

विनोबा कहता है कि हमको सबसे दोस्ती करनी है, इसलिए किसीका किसीसे पैसे से व्यवहार न हो।

अब दूसरी तरह से सोचिये। एक आदमी ने अदालत में नालिश की कि यह दूसरा आदमी हमारी औरत को भगा कर ले गया। अदालत ने कहा, "तुम क्या चाहते हो?" उसने कहा, "हमको दस हजार रुपये हरजाना मिल जाना चाहिए।"

अदालत में एक और दूसरा आदमी आया। कहने लगा: "मैं इसके कारखाने में काम करता हूँ, मेरा हाथ टूट गया है।"

अदालत पूछती है: "तुमको क्या चाहिए?"

वह कहता है: "मुझे हाथ के बदले में पंद्रह हजार रुपये मिलने चाहिए।"

फिर तीसरा, दादा धर्माधिकारी वहाँ पहुँचा। कहने लगा: "इसने हमको भरे बाजार में सबके सामने जूता मार दिया, हमारी इज्जत लुटा दी।"

अदालत पूछती है: "तुमको क्या चाहिए?"

हमने कहा: "हमारी मानहानि के बदले पचीस हजार रुपये मिलने चाहिए!"

अब देखिये क्या हाल हुआ! औरत के बदले में पैसा, हाथ के बदले में पैसा और इज्जत के बदले में भी पैसा! आगे चल कर वोट के बदले में और भगवान् के बदले में भी पैसा होगा! आज 'भगवद्गीता' तीन आने में मिलती है, पर सिगरेट का डिब्बा सवा रुपये में मिलता है। तो सीगरेट का डिब्बा संपत्ति है और भगवद्-गीता विपत्ति है!

इस मूल्य को बदल देने का ही नाम है—क्रांति!

तीसरी तरह से सोचिये। मैंने दामोदर को नौकर रख लिया, ताकि वह हमारे घर में रात को पहरा दे। इतने में सच्चिदानंद आता है और हमारे मकान को आग लगाता है। दामोदर सच्चिदानंद को आग लगाने से रोकता है। इस दौड़-धूप में उसके कपड़े जल जाते हैं और वह खुद भी थोड़ा भूँज जाता है। मैं उसको उस रोज चार रुपये दे देता हूँ! पर उसके शरीर के जल जाने की पूर्ति भी क्या मैं उन चार रुपयों से कर सकता हूँ?

मैं नाव में बैठा हूँ। नाव डाँवाडोल होती है। मैं पानी में गिर जाता हूँ। माँझी मुझे बचाता है। मैंने उसको पाँच रुपये दे दिये। क्या यह मेरे जान की कीमत है? चीन से भारत में एक हवाई जहाज आ रहा था। उसको आग लगी, तो नाविक ने सारे यात्रियों को बाहर निकाल दिया और जब तक सब बाहर नहीं निकले, खुद बाहर नहीं आया! परिणामस्वरूप खुद जल गया। उसको भले ही पाँच हजार रुपये तनख्वाह मिलती रही हो, लेकिन उसके इस ईमान की भी कोई तनख्वाह आप दे सकते थे?

विनोबा कहता है कि इन्सान की इन्सानियत की कोई कीमत नहीं हो सकती। उसके काम की भी कीमत नहीं हो सकती। सती के सतीत्व का कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता, मनुष्य के ईमान का मूल्य नहीं आँका जा सकता, देश की आजादी का भी कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता। नागरिक के वोट का भी क्या ऐसा कोई मूल्य हो सकता है?

विनोबा कहता है कि मनुष्य के श्रम का कोई मूल्य नहीं, वह अनमोल है। पूंजीवाद कहता है कि "मेहनत मजदूर की और दौलत मालिक की।" समाजवाद कहता है, "जिसकी मेहनत, उसकी दौलत।"

सर्वोदय कहता है, "मेहनत इन्सान की, दौलत भगवान् की।"

यह नयी क्रांति है, जिसका आरंभ आपके इस कोरापुट में हुआ। इस क्रांति में कई खूबियाँ हैं। आप यह जानते हैं कि दुनिया में क्रांति की नकल कभी नहीं होती। अमेरिका और फ्रांस में जो क्रांतियाँ हुईं, वह किसीकी नकल नहीं थी। लेनिन और माओ ने जो क्रांति की, वह किसीका अनुकरण नहीं था। क्रांति के सिद्धान्त सार्वभौम होते हैं, लेकिन प्रत्येक क्रांति अपने में नयी होती है। मातृत्व का सिद्धांत सार्वभौम है, लेकिन हर माता का बेटा दुनिया में उसके लिए अपूर्व होता है, आप भी अपूर्व हैं, मैं भी अपूर्व! हर व्यक्ति अपूर्व है। इस तरह हर देश की क्रांति अपूर्व हुआ करती है।

इस क्रांति में दो बुनियादी चीजें हैं: एक तो यह है कि यह किसानों की क्रांति है। दूसरी यह है कि यह करुणा की क्रांति है, क्रोध या मत्सर की नहीं।

(क्रमशः)

आग लगाना सरल है, पी जाना मुश्किल!

एक बार गोकुल-वृंदावन में आग लगी! सब लोग घबड़ा गये, तो भगवान् श्रीकृष्ण उस आग को ही पी गये! ऐसे आग पीने वाले बहुत कम होते हैं, पर लगाने वाले सब होते हैं। गाँव वालों के बीच तरह-तरह के भेद पैदा किये और झगड़े लगा दिये, तो लग गयी आग! यह तो बहुत ही आसान है, परंतु यही आग पी जाना बहुत मुश्किल है! गाँवों के जहाँ टुकड़े होते हैं, वहाँ गाँव का भला नहीं होता। आज ही क्या कम भेद पड़े हैं? ऊपर से ये चुनाव! इलेक्शन में एक ने किसी को वोट दिया और दूसरे ने दूसरे को, तो दोनों में जिंदगी भर के लिए द्वेष रह गया! हो गये टुकड़े। इससे गाँव कभी एक नहीं होगा। देश में पार्टियाँ चाहिए, तो रहने दीजिये; लेकिन उनके कारण गाँवों के टुकड़े क्यों बनाते हैं? कहते हैं कि फलाँ पार्टी हमें स्वर्ग ले जायेगी! चलो, इसी पर गाँव में पार्टी-भेद हो गया! पर स्वर्ग में जाने के पहले गाँव तो नरक में ही जा रहा है। हमें ऐसे स्वर्ग में नहीं जाना है! हमारे गांव के टुकड़े नहीं होने चाहिए। पाँच पांडवों के माफिक सारा गांव रहे। वे जंगल में घूमते थे, लेकिन शत्रु को भारी होते थे, क्योंकि वे एक हुए थे। उनके बीच मतभेद भी होते थे, हर एक का विचार हर समय एक नहीं होता था, फिर भी वे सब अपने बड़े भाई की बात मानते थे। उनकी हार भी कभी नहीं हुई। इसलिए गांव के लोगों को पांडवों के जैसा ही एक होकर रहना है।

(अप्पाकराई, मदुरै, ५-६-५७) —विनोबा

---

www.vinoba.in

स्वर्ग-मर्त्य

(श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर)

इंद्र—सुरगुरु, एक दिन दैत्यों द्वारा हमारा स्वर्ग छिन गया था। तब हम देव और मानवों ने मिल कर स्वर्ग के लिए युद्ध किया था और स्वर्ग का उद्धार किया था। किंतु अब हमारी विपदा उससे कहीं ज्यादा बड़ी है। इस बात का विचार करके देखिये।

बृहस्पति—महेन्द्र, आपकी बात मैं अच्छी तरह समझ नहीं पाया। स्वर्ग के लिए किस विपदा की आशंका कर रहे हैं?

इंद्र—स्वर्ग नहीं है।

बृहस्पति—स्वर्ग नहीं है? यह कैसी बात! तो हम हैं कहाँ?

इंद्र—हम लोग अपने अभ्यास पर हैं। स्वर्ग न जाने कब क्रम-क्रम से क्षीण होते-होते छाया होकर लुप्त हो गया है, यह जान भी नहीं पाये।

कार्तिकेय—क्यों देवराज, स्वर्ग के सब समारोह, सब अनुष्ठान तो चल रहे हैं?

इंद्र—अनुष्ठान और समारोह बढ़ गये हैं। दिवस के अंत में सूर्यास्त के समारोह के समान उसके पीछे अंधकार है। तुम तो जानते हो, देव-सेनापति, स्वर्ग इतना मिथ्या हो गया है कि सब प्रकार की विपदा का भय तक चला गया है। दैत्यों ने युगयुगांतरों से उस पर आक्रमण नहीं किया, इसका खयाल भी नहीं है। बीच-बीच में स्वर्ग का जब पराभव होता था, तब स्वर्ग था, किंतु जब से—

कार्तिकेय—आपकी बात कुछ-कुछ समझ में आ रही है।

बृहस्पति—स्वप्न से जागते ही जिस प्रकार समझ में आ जाता है कि स्वप्न देख रहा था, इंद्र की बात सुनते ही जान रहा हूँ कि जैसे एक माया के बीच था। किंतु अब भी उसकी खुमारी संपूर्ण रूप से गयी नहीं है।

कार्तिकेय—मुझे कैसा बोध हो रहा है बताऊँ? तरकश में तीर हैं, उन्हीं तीरों का बोझ उठाये हूँ, उन्हीं तीरों में मन बँधा है, सोचता हूँ—सब ठीक है। इसी समय न जाने कौन बोल उठा, एक बार अपने चारों तरफ आँख उठा कर देखो। नजर उठा कर देखता हूँ, तो तीर है, लेकिन लक्ष्य करने के लिए कुछ नहीं है। स्वर्ग का लक्ष्य चला गया है।

बृहस्पति—ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण तो जानना चाहिए।

इंद्र—जिस मिट्टी से रस खींच कर स्वर्ग के फूल फूटे थे, उसी मिट्टी के साथ उसका संबंध टूट गया है।

बृहस्पति—मिट्टी आप किसे कह रहे हैं?

इंद्र—पृथ्वी को। याद होगा, एक दिन मनुष्य ने स्वर्ग में आकर देवता के काम में योग दिया था और देवताओं ने पृथ्वी पर उतर कर मनुष्य के युद्ध में अस्त्र धारण किया था। तब स्वर्ग-मर्त्य, दोनों ही सत्य हो उठे थे, इसीलिए उस युग को सत्ययुग कहते थे। उसी पृथ्वी के साथ योग न रहने पर स्वर्ग अपने ही अमृत से क्या बच सकता है?

कार्तिकेय—और पृथ्वी भी तो जा रही है, देवराज। मनुष्य मिट्टी के साथ इस तरह मिलता जा रहा है कि वह अपने शौर्य पर अब विश्वास ही नहीं करता। केवल वस्तु के ऊपर ही उसका भरोसा है। वस्तु को लेकर ही मारामारी-खूनाखूनी हो रही है। स्वर्ग का आकर्षण जो टूटा है, तो आत्मा वस्तु को भेद कर प्रकाश की ओर उठ ही नहीं पा रही है।

बृहस्पति—अब उद्धार का उपाय क्या है?

इंद्र—पृथ्वी के साथ स्वर्ग का फिर से योगसाधन करना होगा।

बृहस्पति—लेकिन, देवता जिस पथ के द्वारा पृथ्वी पर जाते थे, बहुत दिन हुए, उस पथ का चिह्न लोप हो गया है। मैंने तो समझा था, अच्छा ही हुआ; सोचा था, इस बार प्रमाणित हो जायगा कि स्वर्ग निरपेक्ष है, निरवलंब है, वह अपने आप में ही संपूर्ण है।

इंद्र—एक दिन सभी का यही विश्वास था, किंतु अब समझ में आ रहा है कि पृथ्वी के प्रेम से ही स्वर्ग बच सकता है, नहीं तो स्वर्ग सूख जायगा। अमृत के अभिमान में इस बात को भूल गये, इसीलिए पृथ्वी पर जाने का देवताओं का पथ लोप हो गया।

कार्तिकेय—दैत्यों के पराभव के बाद से हम लोगों ने गढ़-कोट बाँध कर स्वर्ग को सुरक्षित कर दिया। उस दिन से स्वर्ग का ऐश्वर्य स्वर्ग में ही जमा होता आ रहा है; बाहर उसका कोई उपयोग नहीं, उसका कोई क्षय नहीं। युग-युग की निर्विघ्नता के कारण उसकी इतनी उन्नति हो गयी है कि बाहर के सब कुछ से स्वर्ग बहुत दूर चला गया है। स्वर्ग इसीलिए आज अकेला है।

इंद्र—उन्नति हो चाहे दुर्गति हो, जो समग्र के साथ विच्छेद लाती है, वही व्यर्थता लाती है। क्षुद्र से महत् जब दूर चला जाता है, तब उसका महत्त्व निरर्थक होकर खुद ही खुद को भारग्रस्त मात्र करता है। स्वर्ग का आलोक आज अपने मिट्टी के प्रदीप से विच्छिन्न होकर श्मशान-आलोक हो उठा है—मानवी स्वामित्व से दूर होकर वह अपने स्वामित्व से भी दूर हो गया है। उसके लिए यह सजा बुझ जाने की सजा से भी गुरुतर है। देवलोक ने स्वयं को अति विशुद्ध रखने के लिए अपनी शुचिता की उच्च प्राचीरों में ही स्वयं को बंदी किया है। वही दुर्गम प्राचीर तोड़ कर गंगा की धारा के समान मलिन मर्त्यलोक में उसे प्रवाहित करने पर ही उसका बंधन-मोचन होगा। उसके इसी मुक्ति के बेड़े को विदीर्ण करने के लिए ही मेरा मन आज इस प्रकार विचलित हो उठा है। स्वर्ग को मैं घिरने नहीं दूँगा—बृहस्पति, मलिन के साथ, पतित के साथ, अज्ञानी के साथ, दुखी के साथ उसे एक में एक कर देना होगा।

बृहस्पति—तब आप क्या करना चाहते हैं?

इंद्र—मैं पृथ्वी पर जाऊँगा।

बृहस्पति—वह जाने का पथ ही तो बंद है, उसीका तो रोना है!

इंद्र—देवता के स्वरूप में वहाँ अब नहीं जा सकूँगा, मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करूँगा। नक्षत्र जिस प्रकार टूट कर अपने आकाश के प्रकाश को आकाश ही में खत्म करके मिट्टी होकर मिट्टी को आलिंगन करता है, मैं भी उसी प्रकार पृथ्वी पर जाऊँगा।

बृहस्पति—आपको जन्म दे, ऐसा उपयुक्त वंश पृथ्वी पर अब कहाँ है?

कार्तिकेय—वैश्य आजकल राजा हैं, क्षत्रिय आजकल वैश्य की सेवा में लड़ाई करते हैं, ब्राह्मण आजकल वैश्य के दास हैं।

इंद्र—कहाँ जन्म लूँगा, यह तो मेरी इच्छा पर निर्भर नहीं है जो मुझे आकर्षित कर लेगा, वही मेरा स्थान होगा।

बृहस्पति—आप इंद्र हैं, इस स्मृति को किस प्रकार से—

इंद्र—इस स्मृति का लोप करके ही मैं मर्त्यवासी होकर मर्त्य की साधना कर सकूगा।

कार्तिकेय—इतने दिन पृथ्वी के अस्तित्व को भूले ही हुए था, आज आपकी बात से अचानक मन व्याकुल हो उठा। वह कृशांगी श्यामा धरती सूर्योदय-सूर्यास्त का पथ पकड़े स्वर्ग की ओर किस उत्सुक दृष्टि से ताक रही है? उस भयभीता का भय-भंजन करने में क्या आनंद है? उस व्यथिता के मन में आशा का संचार करना कितने गौरव की बात है? वह चंद्रकांत-मणिकिरीटिनी नीलांबरी सुंदरी क्योंकर भुल गयी है कि वह रानी है? उसे फिर से याद दिलाना होगा कि वह देवता की साधना का धन है, वह स्वर्ग को चिरप्रिया है।

इंद्र—मैं वहाँ जाकर उसके दक्षिण पवन में इस बात को फूंक आना चाहता हूँ कि उसीके विरह में स्वर्ग के अमृत का स्वाद चला गया है एवं नंदनकानन के पारिजात म्लान हैं। उसको घेरे हुए जो समुद्र हैं, वही तो स्वर्ग के आँसू हैं, उसी विच्छेद-क्रंदन को ही तो उसने मर्त्यलोक में अनंत कर रखा है।

कार्तिकेय—देवराज, अगर अनुमति हो, तो हम भी पृथ्वी पर जावें।

बृहस्पति—वहाँ जाकर मृत्यु के घूँघट में से अमृत की ज्योति को एक बार देख आवें।

कार्तिकेय—वैकुण्ठ की लक्ष्मी अपने मिट्टी के घर में नित नयी लीला-विस्तार करती है। हम लोग उसके रस से क्यों वंचित होवें? मैं अब समझ गया हूँ कि पृथ्वी को मेरी दरकार है; मैं पृथ्वी पर नहीं हूँ, तभी तो मनुष्य निर्लज्ज होकर स्वार्थ के लिए युद्ध करता है, धर्म के लिए नहीं।

बृहस्पति—और मैं नहीं हूँ, तभी तो मनुष्य केवल व्यवहार के लिए ज्ञान की साधना करता है, मुक्ति के लिए नहीं।

इंद्र—तुम लोग वहाँ जाओगे, मैं तो उसीका उपाय करने जा रहा हूँ—समय होते ही तुम लोग परिणत फल की तरह अपनी मधुरता के भार से सहज ही मर्त्यलोक में झर पड़ोगे। तब तक प्रतीक्षा करो।

कार्तिकेय—कब खबर मिलेगी महेन्द्र, कि आपकी साधना सार्थक हुई?

बृहस्पति—क्या यह भी छिपा रहेगा? जब जयनाद से स्वर्ग-लोक काँप उठेगा, तभी समझ जायँगे कि—

इंद्र—नहीं गुरुदेव, जयनाद नहीं होगा। स्वर्ग की आँखों से जब करुणा के आँसू झरने लगें, तभी जानना कि पृथ्वी पर मेरा जन्म लेना सफल हुआ है।

कार्तिकेय—तब तक शायद नहीं जान पावेंगे कि वहाँ धूल के आवरण में आप कहाँ छिपे हैं?

www.vinoba.in

बृहस्पति—इस आँख-मिचौनी में ही तो पृथ्वी का रस है। ऐश्वर्य वहाँ दरिद्र के भेष में दिखायी देता है, शक्ति वहाँ अक्षम की गोद में पलती है, वीर्य वहाँ पराभव की मिट्टी के नीचे अपने जयस्तंभ की नींव रखता है। संभव वहाँ असंभव के बीच घर बना कर रहता है। जो दिखायी देता है, पृथ्वी पर उसे मानना ही भूल है; जो नहीं दिखायी देता, उस पर ही चिरकाल तक भरोसा रखना होगा।

कार्तिकेय—किंतु सुरराज, आपके ललाट की चिरोज्ज्वल ज्योति आज म्लान क्यों हो गयी है?

बृहस्पति—मर्त्यलोक में जाओगे, उसके गौरव की प्रभाओं से आज दीप्यमान हो उठो।

इंद्र—देवगुरु, जन्म की जो प्रसव-वेदना है, वही वेदना मुझे अभी से पीड़ित कर रही है। आज मैं दुःख के अभिसार को जा रहा हूँ; उसीका आह्वान मेरे मन को खींच रहा है। शिव के साथ सती का जिस प्रकार विच्छेद हुआ था, स्वर्ग के आनंद के साथ पृथ्वी की व्यथा का उसी प्रकार विच्छेद हुआ है; उसी विच्छेद का दुःख इतने दिनों बाद आज मेरे मन में राशीकृत हो उठा है। मैं जा रहा हूँ, उसी व्यथा को छाती पर उठाने के लिए। प्रेम के अमृत से उस व्यथा को मैं सौभाग्यवती करूँगा। मुझे विदा दो।

कार्तिकेय—महेन्द्र, हमारे लिए भी पथ कर दो। हम लोग वहीं जाकर आपसे मिलेंगे। स्वर्ग आज दुःख के अभिमान के लिए कूच करे।

बृहस्पति—हम लोग पथ की प्रतीक्षा में हैं, देवराज। स्वर्ग से बाहर होने का पथ कर दो, नहीं तो हमारी मुक्ति नहीं है।

कार्तिकेय—बाहर करो, देवराज, स्वर्ग के बंधन से हमें बाहर करो—मृत्यु के बीच से ही हमारे पथ की रचना करो।

बृहस्पति—तुम स्वर्गराज हो, आज तुम स्वर्ग का तमोभंग करके जता दो कि स्वर्ग पृथ्वी का ही है।

कार्तिकेय—जिन्होंने स्वर्ग की कामना से पृथ्वी को त्याग करने की साधना की है, उन्हें आपने हमेशा उन्हींकी पृथ्वी पर लौटा देने की चेष्टा की है—आज स्वर्ग को उसी पथ पर ले जाना होगा।

इंद्र—उसी बाधा के भीतर से मुक्ति में जाने का पथ—

बृहस्पति—जो मुक्ति अपने ही आनंद में चिर दिन से बाधा के साथ संग्राम करती रहती है।

(अनुवादक—मदनलाल जैन)

यह दुनिया को छोड़ने का आंदोलन नहीं है!

(विनोबा)

कुछ लोग हमसे कहते हैं कि आप यान्-एनदु (मैं-मेरा) छोड़ने के लिए कहते हैं, पर यह तो संतों ने भी कहा था! संतों का कुछ लोग सुनते थे और बहुत थोड़े लोग उसे आचरण में लाते थे। परन्तु आप तालुका-दान की बात कहते हैं, याने सबको छोड़ने के लिए कहते हैं। एक भी सत्पुरुष का असर सब लोगों पर नहीं हुआ, तो अब आपका होगा, ऐसा कैसा कहते हैं?

इसका उत्तर हमने कई बार दिया है। पुराने सत्पुरुष जो छोड़ने की बात कहते थे, वह दुनिया को छोड़ने की, दुनिया से अलग होने की वह बात थी। वह बहुत बड़ी बात थी, इस वास्ते चंद ही लोगों ने सुनी। वह भी सत्पुरुषों ने कहा, इस वास्ते सुनी। नहीं तो कोई निकम्मा मनुष्य कहेगा, तो उसकी कौन सुनेगा! हाँ, शंकराचार्य, माणिक्यवाचकर आये, तो उनका सुनना पड़ता है और कुछ लोग उसके मुताबिक चलते भी हैं, लेकिन हम वैसी बात नहीं करते। हम कहते हैं कि आप दुनिया के साथ एकरूप हो जाइये। दुनिया से अलग रहोगे, तो दुनिया से टक्कर होगी, इस वास्ते दुनिया से मिल जाना चाहिए। हम परिवार छोड़ने की भी बात नहीं करते। हम परिवार व्यापक बनाने की बात करते हैं।

माणिक्यवाचकर का भजन है: "कलंदु वालुम् आरी अरिया" (मिलजुल कर काम करने का रास्ता मुझे मालूम नहीं।) इस पर कल हमने कुछ कहा था। सभा के बाद एक भाई ने हमसे कहा कि "उस भजन में ऐसा है कि माणिक्यवाचकर परमेश्वर के साथ एकरस होने की बात कहता है, पर आपने तो सब लोगों के साथ, गाँव के साथ एकरस होने की बात कही। आपने तो एक नया ही अर्थ उस वाक्य में से निकाला।" हमने कहा कि हमारा ईश्वर कहीं एक कोने में नहीं है, जिसके लिए सब छोड़ कर उसके पास जाना पड़े। हम समझते हैं कि वह सब दूर फैला है। इस वास्ते हम मानते हैं कि ईश्वर के साथ मिलना याने सबके साथ मिलना। इसीलिए संत-सत्पुरुष दुनिया छोड़ने को जो बात कहते थे, वे हम नहीं कहते हैं। उनके विचार के लिए हमें आदर है। हम अपने जीवन में वह विचार लाने की कोशिश करते हैं। इस वास्ते भूदान-कार्य करते हुए भी हम अपना चित्त शांत रख सकते हैं। लाखों लोगों ने लाखों एकड़ जमीन दान दी है। वह कैसे बाँटी जाय, संपत्तिदान किस तरह लेना होगा, ग्रामदान-आंदोलन किस तरह बढ़ाया जाय, साहित्य-प्रचार किस तरह बढ़ाया जाय, ऐसी कितनी ही समस्याएँ हमारे सामने आती हैं। उन पर हमारा चिंतन सिर्फ दिन में ही होता है, परंतु सोते समय ईश्वर का नाम लेकर सोते हैं, तो दो मिनट की भी देरी नींद आने के लिए नहीं लगती। जो निष्काम सेवा करता है और "मैं दुनिया से अलग हूँ," यह पहचानता है, उसीको यह सध सकता है। कोई दुनिया की सेवा करने निकला और वह बोझ अपने सिर पर रखे, तो वह खतम ही हो जायगा। इसलिए दुनिया से अलग होने का जो विचार संत-पुरुषों ने दिया है, उसके लिए हम आदर रखते हैं, आचरण में लाते हैं।

पर यान्-एनदु (मैं-मेरा) को यह जो बात है, उससे दूसरी बात हम चाहते हैं। हम चाहते हैं कि "यह मेरा खेत, यह मेरा लड़का", यह मत कहो। "ये हमारे खेत, ये हमारे लड़के", ऐसा कहना चाहिए। इस तरह हम सारे गाँव को "हमारा" रूप देना चाहते हैं। इससे बड़ा परिवार बनाना चाहते हैं। यह स्पष्ट है कि कोई भी अपने से ज्यादा दूसरों पर प्यार करता है। अपने परिवार में अपने से ज्यादा प्यार बाल-बच्चों पर करता है कि नहीं? इस वास्ते दूसरों पर अपने से ज्यादा प्यार करने की तालीम तो हमें मिलती ही है। सिर्फ इतना ही है कि वह कुटुम्ब तक ही सीमित है। वह तालीम बढ़ाइये, यही हम कहते हैं। जिस जमाने में इसके बिना नहीं चलेगा, उसी आज के जमाने में हम कहते हैं। जंगल में शेर से मुकाबला करने के लिए दस-बीस हाथी इसलिए इकट्ठे होते हैं कि उनके लिए वह जरूरी है। उसके बिना जीना असंभव है। तो जो चीज वे हाथी करते हैं, वह हम करें, तो क्या होगा?

आज गाँवों पर व्यापारी, साहूकार, वकील, सरकार आदि लोगों का हमला हो रहा है और वे हमले वाले सुव्यवस्थित, संगठित हैं। हम अलग-अलग रहें, तो उनके ज्वाइन्ट फ्रन्ट (मिलेजुले मोर्चा) से हम बच नहीं सकते। इसलिए यान्-एनदु (मैं-मेरा) छोड़ कर गाँव की मालकियत करोगे, तभी टिक सकोगे। इस वास्ते हम "मैं-मेरा" छोड़ने की बात कहते हैं, जो शंकराचार्य और माणिक्यवाचकर जो कहते हैं, उससे भिन्न है। उनकी भी बात सही है। उनकी राह पर चलने की हम कोशिश करते हैं। पर उनकी वह बात हम आपके सामने रखना नहीं चाहते हैं।

सब हमले बाहर से ही होते हैं, ऐसा नहीं है। गाँव के अंदर से और बाहर से, दोनों तरफ से गाँव पर हमले होते हैं। इससे बचने के लिए हर घर में शादी के लिए बैंक रहे, तो एक हमला बंद हो जायेगा! गाँव में सामूहिक दूकान होगी, जिससे दूसरा, व्यापारियों का हमला बंद होगा। जो चीज गाँव में बन सकती है, वह गाँव में ही बनानी चाहिए। ऐसे एक-एक हमले हमें दूर करने हैं।

(सापटूर, मदुरा, ८-३)

सार लेकर असार मिटायें

चि. रामकृष्ण ने फिर से एक बार, जमनालालजी के मेरे कुछ संस्मरण मैं लिखूँ, ऐसा आग्रह किया। स्थूल स्मरण तो दिन-ब-दिन भूलता ही जा रहा हूँ। सूक्ष्म स्मरण सदैव मेरे मन में रहा है और भूदान-यज्ञ, संपत्तिदान-यज्ञ के रूप में वह प्रगट हो रहा है। जमनालालजी का स्मरण इन कामों में मुझे बल देता है और मेरा विश्वास है, वे दुनिया के जिस किसी कोने में हों, इस काम के लिए शुभकामना करते होंगे।

पुस्तक तो खैर प्रकाशित होगी, फिर अप्रकाश में जायगी। लेकिन सद्-भावना अनंत काल काम करती रहेगी। स्थूल स्मृति के साधन मैंने अपने पास रखे नहीं। पत्र-टिप्पणियाँ आदि जो समय-समय पर लिखी गयीं, अग्नि-नारायण को समर्पित की गयीं। अब मेरे साथी मानों उसका प्रतिशोध ले रहे हैं और मेरे पत्रों का व्यर्थ संग्रह कर रहे हैं! मुझे आशा है, भगवान् उनको सद्बुद्धि देगा और सार लेकर असार मिटाने की शक्ति उनमें आयेगी। सार जीवन में प्रगट होता है। वह स्वयमेव प्रकाशित है।*

—विनोबा

---

* सस्ता-साहित्य-मंडल, नयी दिल्ली की 'संस्मरणांजलि' पुस्तक के लिए लिखा हुआ पत्र। स्व० जमनालालजी बजाज के संबंध के संस्मरण इस पुस्तक में संग्रहीत हैं।

www.vinoba.in

कोरापुट में एक साल का खेती का अनुभव : १.

(गोविन्द रेड्डी)

१ जनवरी '५६ से कोरापुट (उड़ीसा) के ग्रामदानी गाँव गरंडा में मैं रह रहा हूँ। गरंडा ११ ग्रामदानी गाँवों का केंद्र है। पहले १-२ मास तो निरीक्षण करता रहा, जिसके दरमियान एक नयी चीज पायी। किसी काम का पुनरुद्धार करना हो, तो सबसे पहले श्रम की आवश्यकता है और यहाँ की जनता तो ७५ प्रतिशत शराब पीने की आदी थी, जिसके कारण उसमें आलस्य भरा रहता था। परिणामतः हर निर्माण-कार्य में असफल होता रहा। शराब पहले बंद कराये बिना चारा ही न था।

यहाँ के आदिवासी शराब का हर काम में उपयोग करते हैं—पूजापाठ में, मरने के बाद आदि। त्यौहारों में तो उसके बिना चल ही नहीं सकता! शराब हर गाँव में हर आदमी तैयार नहीं कर सकता। जहाँ सुविधा है, वहाँ तैयार करते हैं। अक्सर खरीदते ही हैं। पैसा अधिक खर्च नहीं होता, मगर पीने के बाद जो घटनाएँ होती हैं, वे बहुत भयानक और विकराल होती हैं। हर सभा में "आइन्दा नहीं पीयेंगे," ऐसी प्रतिज्ञा सब लेते थे, पर २-३ दिन के बाद फिर पीकर घर में मारपीट करना, गाँव में चिल्लाना, काम नहीं करना, नशे में नाचना, मरा हुआ साँप झेलना-झिलाना, आठ-आठ घंटे मृतवत् पड़े रहना, जहाँ सोये, वहीं पेशाब करना, यह सब होता था। गरीबी हद दर्जे की है। मेरा पड़ोसी शराब पीने में पहले नंबर में था। और भी ७-८ लोग ऐसा ही अधिक पीते थे। तीन-चार जनों ने पीना नहीं छोड़ा, तो आखिर उन्हें कुछ दिन तक बांध कर रखना पड़ा था! दस महीनों में ९० प्रतिशत सफलता शराब से मुक्ति दिलाने में पायी। जो भाई पीना नहीं छोड़ पाये, उनको अपने पास रखा और काम दिया। एक को १३० नारियल के पेड़ों को पानी डालने पर लगाया, तो दूसरे को घर बनाने में।

शराब के अन्त के बाद ही कामों में प्रगति

शराब के अलावा भी कई कारणों से निर्माण का काम ठीक-ठीक नहीं हो पाया, तो अन्य काम करते रहा, जिसमें सिंचाई का काम मुख्य था। एक बांध ७० साल पहले गाँववालों ने बांधा था, जिससे २-३ एकड़ सिंचाई होती थी। पानी के वास्ते अक्सर झगड़ा चलता था। उसी बाँध को हमने ३५०' लंबा ५०' ऊंचा और बाँध के ऊपर १५' चौड़ा किया है और उस पर ३००'×६०'=१८०००' घास लगायी। नहर की लंबाई अब कुल १०५०' है। उपरोक्त काम के लिए २५००७ रुपये खर्च हुए। १००००० घनफुट मिट्टी का काम हुआ। अब इस बाँध के जरिये ४०-५० एकड़ की सिंचाई होगी।

कृषि के साथ मेरा २० साल से निकट संबंध रहा है। इस दरमियान बहुत कुछ देखा, सोचा और किया। जमीन की मौजूदा चकबन्दी में बहुत दोष हैं। उन दोषों को निर्मूल करने के लिए अब तक कृषितज्ञ और सरकारें प्रयत्न कर रही हैं। मगर दोष निर्मूल नहीं हो सका। उन दोषों को दूर करके दोषरहित चकबंदी निर्माण करने की भी कोशिश मैंने जगह-जगह की, मगर कहीं भी स्थान नहीं मिला। आखिर उसी विचार ने कोरापुट के ग्रामदान गाँवों की ओर खींच लिया।

जमीन की चकबन्दी के दोष

(१) भारत में औसतन ३७" वर्षा होती है, जिसमें २२½" पानी बह कर जाता है। १२½" जमीन के अन्दर से बह कर जाता है। सिर्फ २½" पानी फसल को मिलता है। जमीन के ऊपर पानी बहने से काफी बरबादी होती है। जमीन के काश्त किये हुए ऊपरी स्तर में नायट्रोजन, पोटैश, फॉस्फोरस आदि कीमती तत्त्व मिट्टी के साथ धुल जाते हैं, जिससे जमीन कस-रहित हो जाती है।

एक विशेषज्ञ डॉ वर्माजी कहते हैं : लगातार ४"-५" वर्षा होने से एक एकड़ में से २०६० मन मिट्टी बह सकती है, जिसमें नायट्राजन२ ५० सेर होता है, १६५०) रुपये का, २१९२॥ सेर पोटैश होता है, २१९२॥ रुपयों का और ७२॥ सेर फॉस्फोरस होता है, ७२॥ रुपयों का। इतनी क्षति १८ माह के दरमियान जुताई और अन्य प्रक्रियाओं के जरिये पूरी हो सकता है। लेकिन वर्षा एक ही दिन नहीं होती। साल में ४ महीने वर्षा होती है। फलतः जमीन की क्षति नित्य चालू रहने वाली है। इस क्षति को रोकना आज की चकबन्दी तोड़े बिना अशक्य है। कई चतुर किसान क्षति को रोकने की कोशिश करते हैं, लेकिन चारों तरफ के किसानों की अनिच्छा के कारण रुकावटें होती हैं। एक खेत का संरक्षण करना हो, तो भी चारों तरफ उसका हजारों फुट तक का सम्बन्ध आता है।

इसलिए यह काम पूरे गाँव के सहकार बिना अशक्य है। इसके सिवा निम्न परिस्थितियाँ और हैं : (२) अच्छी जमीन चंद आदमियों के ही पास है। (३) खेतों में आने-जाने का रास्ता नहीं। (४) जहाँ सड़क है, वहाँ सड़क के बगल में जंगली घास का बेतरतीब उत्पादन होता है, जिससे फसल को हानि पहुँचती है। (५) गाँव के पास स्कूल, खेल, गोठान, खाद के गड्ढे आदि के लिए जगह नहीं है। (६) हर खेत के पानी का निकास नहीं है। (७) सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीन एक ही जगह पर, एक ही आदमी के पास है। (८) हर गाँव में चरागाह नहीं है। (९) घर बनाने के लिए आवश्यक पत्थर-मुर्रम-लकड़ी और खलिहान की जगह नहीं है। (१०) गाँव के विस्तार के लिए गुंजाइश नहीं (११) स्मशान के लिए भी कहीं-कहीं जगह नहीं। (११) हिसाब से कोई भी खेत नहीं; इत्यादि। गाँव के पास सार्वजनिक काम के लिए जगह लेनी हो, तो भी कोर्ट के जरिये ही लेना पड़ता है। इन सब बीमारियों की जड़ निजी मालकियत में ही है।

दोषरहित चकबंदी

हमने चकबंदी न होने के सारे दोष गाँववालों को कई दफा समझाये। १० महीने के बाद सैकड़ों सालों के दोषों की दहन-क्रिया हुई। ग्रामदान के बाद पुरानी चकबंदी का नाश करके नयी चकबंदी करना उन गाँवों में पहला काम है, तभी सही निर्माण-कार्य होगा। व्यवहार में जैसे रुपये, माप, वजन आदि हिसाब से बनाये हैं, वैसे ही हिसाब से जमीन के प्लॉट भी बनाने चाहिए। १०० डिसिमल का एक एकड़ होता है। जमीन और पानी के मुताबिक ५-१०-२०-३० आदि डिसिमल के या १-२-३-४ एकड़ के टुकड़े हों।

बाँध के नीचे ६० एकड़ जमीन थी। यह चंद लोगों के पास थी। १० महीने के बाद यह जमीन बँटी। १ जनवरी '५६ से पुनरुद्धार का काम आरंभ हुआ। ६० एकड़ में से बाँध के पास ही ५ एकड़ गाँव के नाम पर रखी गयी है, जिसमें ४ एकड़ धान की है, जिसमें हिसाब से १८ प्लॉट बनेंगे। बाकी ५६ एकड़ में मामूली काश्त चलती थी। छोटे-बड़े हजारों पेड़ हैं। पहले साल में १३ एकड़ जमीन धान के योग्य बनायी। ३६ प्लॉट बनाये। हर प्लॉट ३० डिसमिल का है। सिर्फ दोही प्लाट ४० डिसमिल के हैं। हर प्लॉट में १०-१० डिसिमल के तीन-तीन छोटे प्लॉट बनाये हैं। कुल ११० छोटे प्लॉट हैं। ११० प्लॉट बाँध के नीचे और नहर के नीचे १॥ एकड़ जमीन गयी। कुल बाँध की लंबाई १६५६०' है, जिसमें १०४९६०' घनफुट मिट्टी डाली गयी। और चार प्लॉट बनाने बाकी हैं। जिस ढंग से ११० प्लॉट बनाये हैं, उसके बारे में ६-७ सालों से कई कृषितज्ञों से विचार-विनिमय हुआ था। एक भी सहमत नहीं मिला। सबका कहना था कि हिसाब से सीधी लाईन से प्लॉट बनाने में अधिक खर्च होगा, जनता अज्ञान है, उनसे यह होना अशक्य है, इसलिए पानी के समतल के मुताबिक बाँध की रचना हो, आदि।

१३ एकड़ों में ७ एकड़ ६' जमीन ऊंची थी। छोटे-बड़े ६००० पेड़ भी थे। एक-एक प्लॉट बनाते समय हजारों घनफुट मिट्टी एक हफ्ते में इधर-उधर हटाई गयी। कई प्लॉट ऐसे हैं, जिनको समतल बनाने में बहुत खर्च होगा और महीनों तक काम चलेगा। अनुभव से देखा गया कि एक भाई को सबसे खराब जमीन मिली, तो उसने एक हफ्ते में उसे उत्तम दर्जे की समतल जमीन बना ली कई लोग डरते थे। रोज उनके साथ ३-४ घंटे रह कर प्रत्यक्ष कामोंमें भाग लेने से २१ दिन में ११० प्लॉट बनाते समय कई लाख घनफूट मिट्टी उठायी गयी। पंद्रह साल के एक लड़के ने ३९ घंटों में १०७५० घनफूट मिट्टी हटायी। उस लड़के को इतनी ही मदद दी, याने ३९ घंटों के लिए मजबूत भैंसा दिया गया था। उपरोक्त काम, गाँव में जो औजार थे, उनसे किये हैं। सामान कुछ भी नहीं था। १७ रु० का बाहर से लाया, जिसमें "दतारी" का विशेष महत्त्व है। कृषि-औजारों के निमित्त सारा भारत घूम कर सैकड़ों औजार इकट्ठे किये गये, हजारों रुपये खर्च किये गये, तो भी जंगल का यह मामूली कीमतवाला औजार भूल ही गये थे। इसी दतारी के जरिये २१ दिनों में अज्ञानी लोगों के मार्फत नयी चीज खड़ी हुई। २१ दिन का दृश्य इस कलम से यहाँ वर्णन करना अशक्य है। ११० प्लॉट के बाँध की लंबाई ३ मील १ फर्लांग है। एक लाईन में बाँध नहीं हो सकता है, ऐसा विशेषज्ञों का कहना है। पर यहाँ अज्ञानी लोगों के जरिये ही इसका जवाब देने की कोशिश की गयी है, तो भी इस चकबंदी में परिपूर्ण विचार प्रकट नहीं हो पाया है।

१३ एकड़ चकबंदी करने में १ दिन समय लगा। २-३ साल में ७ गाँव में सैकड़ों एकड़ की चकबंदी करनी है, जिसमें परिपूर्ण विचार प्रकट करने का प्रयत्न है।

(क्रमशः)

———

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ
२९ मार्च सन् १९५७

ग्रामदान और कल्याण-योजनाअें !

(वीनोबा)

ग्रामदान और कल्याण-योजनाओं में क्या फर्क है, अैसा पूछते हैं। दोनों में कोअी मेल ही नहीं है ! बैलों को यह नहीं पूछा जाता है की खेतों में क्या बोना है ? अुनको सीर्फ अच्छा खीलाया जाता है। वैसे ही अीनमें गांवों के लोगों को कुछ पूछा नहीं जायेगा, सरकार ही सारी योजनाअें बनायेगी और लोग वैसा बरतेंगे ! लेकीन अीससे खाना अुनके पेट को ही मीलेगा, अुनके दीमागों को नहीं। अेक सूबे में पांच सौ अेकड़ का अेक सरकारी फार्म है। वहां ट्रैक्टर से ही बहुत सारा काम ले लेते हैं। फीर बचा हुआ काम मजदूरों से लेते हैं। अुत्तम गेहूं फार्म में बोया जाता है, लेकीन वहां का मजदूर अुसे नहीं खा सकता ! बैलों को तो अुस गेहूं का डंठल भी मील जाता है, लेकीन मजदूर के लीअे "सस्ते अनाज की" दूकानें खोली जाती हैं ! अीसमें शर्करावगुंठीत सौम्य शब्द (Euphemism) है। वह होता तो है वास्तव में खराब ही अनाज, लेकीन अुसे कोअी खरीदने के लीअे नहीं आयेगा, अीस भय से नाम रखते हैं, "सस्ता अनाज !" फीर अूपर से अुन पर अुपकार का भी बोझ ! मजदूर जो फसल खुद अुगाता है, अुसीको वह खाने को नहीं मीलेगी ! अीसी तरह अुसके बुद्धी के वीकास की भी कोअी योजना नहीं। पर ग्रामदान में अैसा नहीं है। अीसमें लोगों की बुद्धी का हम पूरा अुपयोग करना चाहते हैं। वहां ग्रामपंचायतें ज़रूर बनेंगी, लेकीन वैसी नहीं, जैसी की आज चलती हैं। आज तो बहुमत से वे चुनी जाती हैं और वे अैसे लोग होते हैं, जो जमीन-संपत्तीवाले होते हैं और सरकार में भी अुनका वज़न होता है, जीसके कारण सत्ता भी अुनके पास होती है। याने हर गांव को लूटने की "डीसेंट्रलाअीज़्ड" योजना ही बन गयी— बहुत दूर से लूटने के लीअे आना न पड़े, अीसलीअे !

ग्रामदान के बारे में पूछते हैं की "क्या अीससे ज्यादा पैसा मीलेगा या क्या अीसमें ज्यादा अुत्पादन बढ़ेगा ?" हम कहते हैं, अुत्पादन बढ़ाने के लीअे ग्रामदान नहीं चाहते हैं ! वह तो अमेरीका में भी बढ़ रहा है ! लेकीन वहां साथ-साथ मानसीक रोग, आत्महत्याअें और भय भी बढ़ रहा है ! ग्रामदान तो हम बुद्धी-वीकास के लीअे चाहते हैं। बुद्धी-वीकास के साथ सुख भी बढ़ेगा और अुत्पादन भी। जैसे स्वराज के प्रश्न में सुख बढ़ना बड़ी बात नहीं थी, अपना राज, अपनी बुद्धी का वीकास बड़ी बात थी, वैसे ही यहां है। अुन्नती बुद्धी के वीकास से ही होती है। अुसके लीअे कहीं तकलीफें भी अुठानी पड़े या प्रयोगों में कहीं अुत्पादन घटे भी, तो दूसरी जगह अुन अनुभवों से लाभ ले लीया जाता है !

शेलम्पट्टी, मदुरा, १६-३-'५७ ——

विनोबा-प्रवचन-सार

आजकल लोग स्वयं ही परमेश्वर बन कर बैठ गये हैं। परमेश्वर याने मालिक। कोई ५० एकड़ जमीन का मालिक, तो कोई ५०० एकड़ जमीन का। कोई कहता है कि मैं इस बंगले का, पैसे का, शरीर का मालिक हूँ ! "अरे, शरीर के मालिक ! तू तो अपना शरीर छोड़ कर भाग जाता है और लोगों को उसे दफनाना पड़ता है ! तू मालिक है, तो शरीर को साथ में क्यों नहीं ले जाता ? परंतु शरीर तो इधर गिर जाता है और तू कहीं चला जाता है ! कहता है कि मैं घर का मालिक हूँ ! तू अपने घर में किसीको आने नहीं देता। लेकिन ये चूहे-चीटियाँ, मक्खियाँ आदि तो तुझसे पूछे बिना ही आते हैं ! लाखों रुपया खर्च कर मकान बनाता है, अतिथि को भी नहीं रहने देता है, परंतु मक्खियाँ आकर खाने पर बैठती हैं; मच्छर आकर शरीर पर बैठ कर खून चूसते हैं और तू कहता है कि मैं मालिक हूँ ! यह तुम्हारा बिलकुल भ्रम है। हम अपने को ईश्वर मानने लगे और सारी दुनिया के हम सम्राट् बन गये, इस गलत विचार के कारण ही दुनिया में द्वेष पैदा होता है।
(एम्बाल, रामनाड, १३-२)

भक्ति का व्यापार !

भक्ति के नाम पर आज बहुत-सा तो भक्ति का व्यापार ही चलता है। जैसे बुनकर आदि होते हैं। वे प्रामाणिक हो सकते हैं, वैसे कुछ लोग भक्त हो गये हैं। भक्त का एक बड़ा लक्षण इन दिनों यह है कि वह उत्पादक काम नहीं करेगा ! ज्ञानी, भक्त, साधु, वैरागी, विद्यार्थी, शिक्षक, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, व्यापारी, वृद्ध; ये सारे काम नहीं करेंगे ! काम न करने वालों की एक जमात बन गयी ! मंदिर में कई दफा छह, छह, आठ-आठ घंटा भजन चलता है। दो-दो घंटों के बाद चाय-नाश्ता भी चलता रहेगा और रात भर भजन चलेगा। परंतु रात भर भजन वही करेगा, जो दिन में सो सकेगा। मजदूर-किसान थोड़े ही रात भर भजन कर सकते हैं ! महात्मा गांधी ईश्वर के बड़े भक्त कहलाये, लेकिन हमने उनको सुबह-शाम आधा-आधा घंटा ही भजन करते हुए देखा, ठीक समय पर सोते और उठते देखा और दिन भर काम करते भी देखा। फिर भी वे ईश्वर में तन्मय थे, लेकिन दस-बारह घंटे सतत भजन करने वाला भी न तन्मय होता है न काम ही करता है !
(तिल्लैवीलाइम्, तंजाऊर, ५-२)

भिक्षा कामधेनु है

शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने लिख रखा है कि "भिक्षा याने कामधेनु हो है।" इसलिए उनका आदेश था कि सारे समाज से भिक्षा लेनी चाहिए। लोग ज्यादा देना चाहें, तो भी केवल एक मुट्ठी भर ही लेनी चाहिए और आज जिस घर से भिक्षा ली, उस घर से फिर कल नहीं लेनी चाहिए। ऐसा विचार था, इसलिए घूमना लाजमी हो जाता था। सारे हिंदुस्तान में वे घूमते ही रहते थे व मठ-स्थापना करते थे। इस तरह से उन्होंने अपना मिशन भिक्षा पर खड़ा किया। यह कोई नयी बात नहीं थी, क्योंकि हिंदुस्तान के सर्वोत्तम और व्यापक आंदोलनों का आधार सदा से भिक्षा ही रहा है। महावीर तथा बुद्ध ने जो काम किया, उसका आधार भी भिक्षा ही रहा। उनके हजारों शिष्यों ने भिक्षा पर ही जीवन-निर्वाह किया, इसलिए वे उत्तर से दक्षिण तक पहुँच सके। (तंजाऊर, २३-१)

शिक्षा याने सत्ता की जगह सेवा

जब हम कहते हैं कि शिक्षण लोगों के हाथ में होना चाहिए, तब उसका अर्थ यह नहीं होता है कि शिक्षण जिला-बोर्ड के ही हाथ में होना चाहिए। इमसे यदि पूछा जाय कि हर गाँव में शेर होना चाहिए या नहीं ? तो हम कहेंगे कि नहीं भाई, शेर को तो जंगल में ही रहने दो, हर घर में एक गाय रखो। जिला यह बोर्ड शेर है या गाय, यह सिद्ध होना चाहिए। आज की हालत में ग्राम-पंचायत शेर ही बनती है, गाय नहीं बनती। तालीम जनता के हाथ में होनी चाहिए, याने उन-उन स्थानों के जो विद्वान लोग होंगे, उनके हाथ में शिक्षा होनी चाहिए। कालेज की डिग्री का नौकरी के साथ संबंध नहीं होना चाहिये। विभागीय परीक्षाएँ हों। लड़के घर में अभ्यास करेंगे, स्वतंत्र पाठशालाओं को प्रोत्साहन मिलेगा, जगह-जगह लोग अपनी शक्ति के अनुसार शिक्षण-क्रम आदि रखेंगे। जनता के हाथ में तालीम हो, इसका अर्थ यही है कि लोगों पर सत्ता चलाने वाला अधिकार किसीको नहीं होना चाहिए। सत्ता एक के हाथ में थी, उसके बदले में चंद लोगों के हाथ में आयी। इससे कोई भिन्न परिस्थिति तो पैदा नहीं हुई। लोगों के हाथ में सत्ता का अर्थ विकेंद्रीकरण है, याने धीरे-धीरे सरकार ही खत्म हो और सत्ता की जगह सेवा आवे।
(कुरतलै, त्रिची, १५-१) ——

www.vinoba.in

पंचामृत

दुनिया में भुखमरी क्यों है ?

दक्षिण अमेरिका के अनेक देशों में भुखमरी की अवस्था उत्पन्न करने की जिम्मेदारी उन लोगों पर है, जिन्होंने व्यावसायिक कारणों से यहाँ की उपजाऊ भूमि को पिछले १००-५० वर्षों के भीतर अनेक प्रकार से नष्ट कर डाला। व्यवसायियों का यह कुचक्र इतना भीषण रहा कि इस महादेश की उर्वरा भूमि आज बंजर हो गयी है और यहाँ के निवासियों के लिए भरपेट भोजन करने का प्रबन्ध करने में भी असमर्थ है। इस दुष्चक्र के चलते यहाँ की भूमि सोने की खानों का पता लगाने के लिए, गन्ने का उत्पादन करने के लिए, कॉफी उगाने के लिए रबर प्राप्त करने के लिए, तेल प्राप्त करने के लिए विनष्ट कर डाली गयी या उस पर लाभकर पौधे लगाये गये और इन सबका परिणाम यह हुआ कि जिस भूमि में सभी प्रकार के खाद्यों को उत्पन्न करने की क्षमता थी, उसका उपयोग विशिष्ट लाभकर, एक ही प्रकार के उत्पादन-माध्यम से व्यर्थ कर दी गयी। भूमि की प्रकृत विशेषता तो नष्ट ही हुई, खाद्य-सुलभ कराने की उसकी क्षमता भी जाती रही।

उदाहरण लीजिये। ब्राजिल के उत्तर-पूर्व में बहुत बड़े पैमाने पर गन्ने की खेती की जाती है। एक समय ऐसा था कि इस भूमि-खंड में उष्णकटिबंधीय सभी प्रकार के फल फूल-अन्न तथा अन्य सामग्रियाँ विपुल परिमाण में उत्पन्न होती थीं। यहाँ का जलवायु कृषि के सर्वथा अनुकूल एवं उपयुक्त था और यहाँ जो जंगल लगे थे, उनमें से अधिकांश वृक्ष अच्छे फल देने वाले थे। आज इन सबको नष्ट कर यहाँ गन्ने की खेती आरंभ की गयी है। फूल-फल साग-सब्जी उगाने की सुविधा न होने, पशु-पालन के लिए संकट होने तथा गन्ने की खेती के कारण उर्वरा शक्ति क्षीण होने का यह दुष्परिणाम हुआ कि ऋतु-ऋतु में उत्पन्न होने वाले अनाज समय से नहीं उगाये जा सकते हैं और जो कुछ थोड़ा बहुत श्रम इनके लिए किया जाता है, वह भी नष्ट हो जाता है। प्रकृति का यह नियम है कि भूमि के एक टुकड़े पर एक ही वस्तु, एक ही पदार्थ की खेती नहीं की जा सकती है। ऐसा करने से भूमि की उत्पादन-क्षमता घट जाती है। गन्ने की ही खेती करने से गन्ने की उपज तो कम हो ही गयी है और पदार्थों के लिए भी अनुकूलता नहीं रह गयी है।

एक दूसरी बात यह है कि शोषक समुदाय ने बहुत बड़े-बड़े फार्म खड़े कर के नकदी फसलें उगाने की बड़ी योजना बना रखी है, जिनका निर्यात करके तुरंत पैसा प्राप्त कर लेने का प्रयत्न किया जाता है। एक ही पदार्थ के उत्पादन की नीति और नकदी फसलें उगाने की पद्धति ने मिल कर इस महादेश को चौपट कर डाला है। यदि यह ढंग जारी रहा, तो यहाँ न तो व्यवस्थित ढंग से कृषि का विकास हो सकेगा और न फिर लोगों को खाने भर के लिए अन्न प्राप्त हो सकेगा। दक्षिण अमेरिका के देशों की भूमि के संबंध में संग्रहीत निम्नलिखित आँकड़ों से वस्तुस्थिति समझने में विशेष सहायता मिलेगी :

अर्जेण्टाइना के ब्यूनर्सआयर्स प्रान्त में, जिसकी जनसंख्या ३५ लाख है, केवल ३२० परिवारों के हाथ में प्रान्त की ४० प्रतिशत भूमि है। अर्जेण्टाइना के दूसरे प्रान्त सान्ताफे में १८९ बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ हैं और इनमें से प्रत्येक के पास औसतन् ६२ हजार एकड़ भूमि है। चावल की मध्यम घाटी में, जहाँ देश की ८० प्रतिशत जनसंख्या बसती है तथा जहाँ देश की सबसे अधिक खेती होती है, भूमि का अधिकांश भाग बड़े-बड़े जमींदारों के हाथ में है, क्योंकि प्रान्त में ४३७ फॉर्मों में ही प्रान्त की ८३ प्रतिशत भूमि केन्द्रित हो गयी है और शेष १७ प्रतिशत भूमि ५९३७ छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी है।

("जॉग्रफी ऑफ़ हंगर" से)

समाजवाद क्रियात्मक बने

यदि किसी राजनीतिक सिद्धान्त को टिकाना है, तो उसे सिर्फ प्रेरणादायक ही नहीं, क्रियात्मक भी होना चाहिए। समाजवाद इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता है। आज यह पुरानी मान्यताओं पर नहीं टिक सकता। यदि इसको कायम रहना है, तो वर्तमान पीढ़ी के लोगों में इसे अपने प्रति निष्ठा का भाव जागृत करना चाहिए तथा लोगों को सक्रिय बना कर अपनी उपयुक्तता प्रमाणित करनी चाहिए। यदि इससे लोगों को मानसिक स्फूर्ति और कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं प्राप्त होती, तो यह प्रभावहीन होकर इतिहास के पृष्ठों पर ही स्थान पाने भर रह जायगा।

("ट्वेंटिएथ सेंचुरी सोशलिज्म" से)

क्रान्तिकारी का कार्य

मार्क्स के शब्दों में : सुधारकों में आम अराजकता और फूट पड़ी है। वे सभी यह स्वीकार करने के लिए मजबूर हैं कि भविष्य के बारे में उनके पास कोई यथार्थ विचार नहीं है। तो भी नये आन्दोलन को यही एक बड़ा सुभीता है कि हम नयी दुनिया को रूढ़िवश पहले से कल्पित करना नहीं, बल्कि उसे पुराने की आलोचना में खोजना चाहते हैं। अब तक पहेलियों के हल को दार्शनिक अपने लिखने की मेज पर तैयार रखे पाते थे, सारी बाहरी मूर्ख दुनिया को बस यही करना था कि आँखों को मूँद ले और पकी-पकायी परम-साइन्स को लेने के लिए मुँह खोल दे। फिलॉसफी ने अपने को बा-निष्पक्ष कर लिया है, जिसका सबसे बड़ा सबूत यही है कि दार्शनिक चेतना ने सिर्फ ऊपरी तौर से नहीं, बल्कि पूरी तौर से युद्ध की ज्वाला में अपने को डाल दिया है। हमारा कार्य यह नहीं है कि पहले ही से भविष्य को निर्माण करें और सभी समय की सभी समस्याओं का हल तैयार करें ; बल्कि निश्चय ही हमारा काम है, साथ ही वर्तमान दुनिया की निष्ठुरतापूर्वक आलोचना करना भी। निष्ठुरता से मेरा मतलब यही है कि न हम अपने निष्कर्षों से ही लोहा लेने में भय खायें और न वर्तमान राज्य-शक्तियों से लोहा लेने में।

—राहुल सांकृत्यायन

आज के मतदाता की बेबसी

वर्तमान काल में लोकतन्त्र का मुख्य तत्त्व मतदान-तन्त्र की विशालता के कारण अपने आप नष्ट हो जाता है। इसको आप निम्न उदाहरण से समझिये :

मान लीजिये कि आप अमेरिका के एक नागरिक हैं और राष्ट्रपति के निर्वाचन में आपकी दिलचस्पी है। तो सिनेट या काँग्रेस के सदस्य होने पर आपका प्रभाव भले ही अधिक हो सकता हो, परंतु एक वोट से भी आपका पक्ष गिर सकता है और उस गिरने का असर वही होगा, जो एक लाख वोट से आपका पराजय होने पर होता। अगर आपकी राजनीतिक गतिविधि किसी छोटे-से क्षेत्र तक परिमित है, तो चाहे आप कुछ कर लें, परंतु यदि आप सामान्य नागरिक मात्र हैं, तो वोट देने के सिवा आपकी कोई बिसात नहीं रह जाती। मैं तो नहीं समझता कि अमेरिका में किसी राष्ट्रपति का ऐसा चुनाव हुआ होगा, जब कि एकाध मतदाता की अनुपस्थिति से चुनाव-फल पर कोई असर पड़ा हो। ऐसी हालत में आप ऐसा महसूस करते होंगे कि एक सामान्य मतदाता की हैसियत से आप उसी तरह बेबस हैं, जिस तरह से अधिनायक-तन्त्र के अधीन रहने वाले को। इसमें शक नहीं कि आप भेड़िया-धसान के चिरन्तन मार्ग पर चल रहे हैं।

कम-से-कम इंग्लैंड में यह हालत नहीं है; क्योंकि वहाँ सारे देश का एक निर्वाचन-क्षेत्र नहीं बनता। १९४५ में मैंने एक उम्मीदवार के लिए कुछ प्रचार-कार्य किया था, जो ४६ के बहुमत से विजयी हुआ। यदि मान लिया जाय कि मेरे प्रयास से सिर्फ २४ आदमियों का मत-परिवर्तन हुआ, तो भी यह निश्चित है कि यदि मैं चुप बैठा रहता, तो चुनाव का नतीजा कुछ दूसरा ही हुआ होता। अगर मजदूर-दल को संसद में एक ही का बहुमत मिला होता, तो निश्चय ही मैं अपने को बहुत महत्त्व का व्यक्ति गिनने लगता। खैर, जो भी अवस्था थी, उसमें इतना तो था ही कि मैं विजयी पक्ष की ओर होने का संतोष प्राप्त कर सका।

यदि लोग स्थानीय राजनीति में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगें, तो हालत काफी अच्छी हो सकती है। लेकिन ऐसा होता नहीं। इसकी वजह यह है कि बहुत से मसले स्थानीय स्तर पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर निर्णित होते हैं। यह खेद की बात है कि मध्ययुग में लोगों के मन में अपने-अपने नगरों के प्रति जो गर्व का भाव होता था और अपने मंडल में अपने नगर को प्रमुखता प्रदान करने की जो भावना रहती थी, वह आज नहीं रह गयी। बहुत दूर की बात नहीं है, इसी जमाने में

www.vinoba.in

स्टॉकहोम के निवासियों के मन में अपने टाऊन-हाल के प्रति जो विशिष्ट भावना थी, वह स्पृहणीय है। आज के इंग्लैंड के बड़े-बड़े नगरों में रहने वालों के मन में ऐसी कोई भावना ही नहीं देखने में आती। —बरट्रेंड रसेल
("इम्पैक्ट ऑफ साइन्स ऑन् सोसायटी" से)

विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है

मेरा विश्वास है कि दूसरी सारी चीजें बराबर हों, तो एक विशाल शहरी आबादी की बनिस्बत एक छोटी-सी देहात की आबादी हर तरह से अधिक स्वस्थ होगी। राजनीतिक दृष्टि से तो वह स्वस्थ होगी ही, क्योंकि वही यथार्थ में आबादी हो सकती है और वहीं पर सजीव लोकसत्ता विकसित हो सकती है। शहरी जीवन के व्यक्ति निरपेक्ष संबंधों में और बड़े पैमाने पर चलने वाले कारखानों में वह लोकसत्ता स्थापित नहीं हो सकती।

विकेन्द्रित बस्तियों में हर व्यक्ति खुली हवा में स्वास्थ्यपूर्ण उद्योगों में भाग ले सकता है और हर रोज अपने गाँव की बनी हुई ताजी चीजें इस्तेमाल कर सकता है। मैंने विकेन्द्रीकरण के सिलसिले में श्रम के और पूंजी के प्रतिफल के सिद्धान्त का विचार किया है। यह स्पष्ट है कि यदि हम मेहनत के अनुपात में उत्पादन चाहते हों, तो विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है।

इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ शहरवासी लोग थोड़े समय के लिए कुछ देहाती लोगों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी हालत में नहीं रखे जा सकते। वे रखे जा सकते हैं और रखे गये हैं; लेकिन यह तभी संभव हुआ है, जब कि कुछ शहरवासियों का, उदाहरणार्थ-ब्रिटेन का, जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए कुछ देहाती क्षेत्रों को —उदाहरणार्थ भारत को व्यवस्थित रूप से लूटना पड़ा। यह लूटेरों की अर्थनीति है और अन्त में वह अपनी मिथ्या समृद्धि के स्रोत को सुखा देती है। ऐसी परिस्थिति में श्रम के अनुपात में उत्पादन का नियम लागू नहीं किया जा सकता। इस सारी समृद्धि के लिए धरती का शोषण होता है और अन्त में उसका सत्त्व नष्ट हो जाता है। रोमन साम्राज्य के दक्षिण आफ्रिकी प्रदेशों के साथ यही हुआ। अकाल के समय परोपजीवी शहरी सभ्यता उस शोषित देहाती सभ्यता से भी अधिक कमजोर साबित होगी, जिसने अपने सत्त्व से उसे जिलाया है।

—रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्स

समाज राज से नहीं चलता

राज केवल समाज के हाथ का उपकरण है, राज बनते-बिगड़ते हैं, उठते-गिरते हैं। समाज सनातन है और उसकी नीति ध्रुव है। नैतिकता से अलग जीवन टिक नहीं सकता। यह सुविधा का प्रश्न नहीं है, सनातनता का प्रश्न है और नीति के स्रोत हमारे धर्मशास्त्र हैं। समाज राज से नहीं चलता, धर्म से, धर्मज्ञ से, धर्मशास्त्र से चलता है। धर्म ही है, जिससे लोकमत के माध्यम से, शासन अनुशासन में रहता है। यह निरी बुद्धि का प्रमाद है, जो राज्य को संपूर्ण स्वत्वाधिकारी मानता है। यह 'सॉवरेण्टी' का शब्द और विचार आप और उन पश्चिम के लोगों से चला है, जो शक्ति से दबते और शक्ति से दबाते आये हैं। राज्य को 'सॉवरेन्' मान लेना उन्होंने सिखाया। पर इतने राज्य ध्वस्त होते देख कर क्या अब भी बुद्धि का प्रमाद टिका ही रहेगा? सॉवरेण्टी कहीं है, तो धर्म-नीति के नियमों के साथ है। वे शाश्वत हैं और अमोघ हैं। उनके भंग पर न व्यक्ति, न राज्य, न कोई, न कुछ टिका है, न आगे टिक पायेगा। संपूर्ण विश्व को धर्म धारण करता है, उससे च्युत होकर जो टिकने और उठने की सोचता है, वह पहले से भ्रांत है। जगदीश्वर अपनी करुणा में ही उसे सहते हैं, अन्यथा आज ही वह गिरा हुआ है!
("जयवर्धन" उपन्यास से) —जैनेंद्रकुमार

हम लोकशाही से दूर पड़ गये हैं

मुझसे कहा जायगा कि तुम तो लोकतंत्रवादी हो, इसलिए मामूली आदमी हो। मामूली आदमियों के नुमाइन्दे हो, इसमें तुम्हें एतराज नहीं होना चाहिए। लेकिन बात ऐसी है कि ये राजनीतिज्ञ मामूली आदमी नहीं होते, गो कि उनकी लियाकतें मामूली से अलहदा नहीं होतीं, वे मामूली आदमियों से अलग अपनी लियाकतों के सबब से नहीं दिखायी देते, वरन् अपने रहन-सहन के ढंग से। वे राजनीति में भाग लेने गये हैं, आप समझें? और वहाँ कामयाब हुए, इसलिए मामूली जिंदगी से गायब हो गये हैं। उनमें खुद में तो कोई ऐसी खूसूसियत नहीं है, जिसका दूसरों पर असर हो। लेकिन उनका रहन-सहन, उनका अनुगमन, उनका छिपाव-दुराव, इन चीज़ों का असर गजब का होता है।

हमारे राजनीतिज्ञों में जो बुराई है, वह यह है कि राजनैतिक जीवन एक पेशा, एक व्यवसाय माना जाता है। उसे व्यवसाय या पेशा हरगिज नहीं समझना चाहिए। उन बिरले व्यक्तियों को, जिनमें राजतंत्र के विषय में विशेष प्रतिभा होती है, अपवाद मान सकते हैं। उनके लिए वह एक विशेष व्यवसाय माना जा सकता है। परन्तु और सब लोगों के लिए राजनीति एक साधारण नागरिक-कर्तव्य ही होना चाहिए। हम चाहें या न चाहें, हमारे जीवन में राजनीति होती ही है। हर घड़ी हम राजनैतिक वक्तव्य देते हैं, चाहे जानबूझ कर देते हों या अनजान में। हमें पता हो या न हो, हम राजनीति के बारे में कोई-न-कोई रुख अख्त्यार करते रहते हैं। वास्तविक लोकतांत्रिक समाज में कुछ यथार्थ राज्यनेता और राज-नीति समझने वाले करोड़ों नागरिक होने चाहिए, न कि कुछ हजार राजनीतिज्ञ और करोड़ों भेड़ें। राजनीति एक ऐसी चीज समझी जाती है, जो साधारण नागरिक से अलग है और इसलिए "उसमें हिस्सा लेने" की जरूरत होती है। यह बात इसका सबूत है कि हम लोकशाही की कल्पना से कितनी दूर पड़ गये हैं।

—जे. बी. प्रीस्टले

शांति की खोज

...दूसरों का भरोसा करना बिलकुल फिजुल है। दूसरे हमारे लिए शान्ति नहीं ला सकते। कोई नेता हमको शान्ति नहीं लाकर देगा, कोई सरकार नहीं, कोई सेना नहीं और कोई देश नहीं। शान्ति उस भीतरी परिवर्तन से आयेगी, जो बाहरी आचरण में प्रकट होगा। भीतरी परिवर्तन एकान्तवास नहीं है, वह बाह्य कर्म से निवृत्ति नहीं है।

किन्तु सम्यक् आचरण तभी हो सकता है, जब कि विचार सम्यक् हो। आत्म-ज्ञान के बिना सम्यक् विचार असंभव है। जब तक आप अपने को नहीं जानते, तब तक शान्ति नहीं।
('फ्रीडम, फर्स्ट ऐण्ड लास्ट' से) —जे० कृष्णमूर्ति

आशा का शुभ संकेत

इन कुछ हफ्तों में जो कुछ हुआ है; उससे यह बात स्पष्ट हो गयी है कि लड़ाई की कल्पना भी नहीं हो सकती; इतना निश्चय कर लेना काफी नहीं। हमको हथियारों का भरोसा ही छोड़ देना होगा और एक ऐसे विश्वव्यापी सहयोग का संयोजन करना होगा, जिसमें उन्नतिशील और संपत्तिमान राष्ट्र दरिद्र और वंचित राष्ट्रों की सहायता करेंगे।

पिछले दिनों जो भयंकर घटनाएँ घटीं, उनमें भविष्य के आश्वासन का एक शुभ-संकेत है। पोलैंड और हंगरी में स्वतन्त्रता के इस नये आन्दोलन में विद्यार्थियों का भाग प्रमुख रहा। उसी तरह ब्रिटेन में फ्रान्स और ब्रिटिश तथा सोवियत आक्रमण के विरुद्ध जो प्रदर्शन हुए, उनमें भी प्रमुख भाग विद्यार्थियों का रहा।

आशा यह की जाती है कि इसमें एक शुभ संकेत है। इधर कुछ वर्षों से बुजुर्गों को दैववाद और पुरुषार्थहीन अनास्था के वात-रोग ने ग्रस लिया था, उसमें से तरुण पीढ़ी बाहर निकलती मालूम होती है।

आज की राजनीति की उलझनें, बढ़ता हुआ केन्द्रीकरण, शासन-सत्ता की प्रचण्डता और सत्ताधारियों के अलगपन का प्रतिकार "क्या फायदा?" की वृत्ति की अपेक्षा, अधिक शाश्वत और अधिक वीरतापूर्ण किसी उपाय से किये जाने की सम्भावना हो, तो यह आशा हो सकती है कि लोकसत्ता दुनिया में फिर एक बार वास्तविक बन जायगी।
('राष्ट्रसंघ के छात्र-विभाग' से)

मनुष्य जब तक अपने को अपने ही घर में कैद करेगा, तब तक उसका संबंध परमेश्वर से नहीं आयेगा। हम सब परमेश्वर के स्वरूप हैं। संतों ने कहा है: "परंद परने" याने फैला हुआ परमेश्वर। जो लोग अपने को परिवार में कैद कर लेते हैं, उनके साथ ईश्वर का संबंध नहीं आता। इसलिए जहाँ हम प्रेम फैलाना चाहते हैं, वहाँ ईश्वर का संबंध आता ही है। भूदान-ग्रामदान तो प्रेम फैलाने के ही कार्य हैं!
—विनोबा

---

www.vinoba.in

संग्रह से असंग्रह की ओर

(अगरचन्द नाहटा)

अन्य प्राणियों की अपेक्षा संग्रह और असंग्रह की वृत्ति भी मनुष्य में ही अधिक से अधिक परिमाण में पायी जाती है। संग्रह के साधन और संरक्षण के उपाय भी सबसे ज्यादा उसीको प्राप्त एवं ज्ञात है और उसीने संग्रह-वृत्ति के लाभालाभ का सबसे अधिक चिंतन व अनुभव करके असंग्रह-वृत्ति या त्याग की ओर भी सबसे अधिक प्रगति की है।

संग्रहीत धन या पदार्थों की तीन ही गतियाँ हैं : दान, भोग और विनाश। भोग के लिए आयु सीमित है और अधिक भोग रोग आदि दोषों का कारण है, इसलिए दान-धर्म को खूब महत्त्व दिया गया है, क्योंकि भोग और दान के रूप में उपयोग न हुआ, तो उस संग्रह का तीसरा मार्ग विनाश ही है, चाहे वह किसी भी तरह से हो। स्वेच्छा से नहीं, तो भी संग्रहीत वस्तुओं को किसी न किसी तरह छोड़ना तो होगा ही। अतः उनका दान करके ही सदुपयोग क्यों न किया जाय ?

ऋषभदेव के पहले जो युगलिक* जीवन था, उसमें न अति भोग था, न योग था। न उग्र पाप था, न धर्ममय जीवन था। अनैतिकता व पाप न होकर एक साँचे में ढला हुआ-सा जीवन था। मन की कलुषित वृत्तियाँ न थीं। इसलिए उनके लिए देवगति का ही विधान मिलता है। इधर जब पाप-प्रवृत्तियाँ पनपीं, तो धर्म की आवश्यकता भी हो उठी। इसीलिए नरक और मोक्ष के द्वार खुल गये। कर्ममय जीवन के साथ धर्ममय जीवन का सम्बन्ध लगा हुआ है। जो मानसिक-शारीरिक शक्ति विकसित होकर अधिक पाप कर सकती है, उसी विकसित शक्ति की दिशा मोड़ कर उसे सत्कर्म में लगा दिया जाय, तो जीवनोत्थान अवश्यम्भावी है। इसीलिए कहा गया है : "जे कम्मे सूरा ते धम्मेसूरा"—अर्थात् जो कर्म करने में शूर है, वह धर्म करने में उतना ही पराक्रम दिखा सकता है। जो अधिक से अधिक संग्रह कर सकता है, वह अधिक से अधिक त्याग भी कर सकता है। वृत्ति या शक्ति की दिशा भर बदलने की बात है।

विश्व में जो भी संघर्ष है, अनीति या अधर्म है, उसका प्रधान कारण संग्रह या ममत्व है। किसी वस्तु पर मैंने अपनापन आरोपित कर दिया; तो उसे मैं दूसरे को न लेने दूँगा, न दूँगा ही। उसके लिए युद्ध, द्वेष, कलह सभी कुछ किये जाते हैं। जो वस्तु मेरी नहीं है, पर उसे प्राप्त करने की मेरी इच्छा हो गयी, तो उसके प्रति मेरा एक ममत्व जगा और फिर जिस किसी भी प्रकार से दूसरे का विनाश करके भी उसकी प्राप्ति का प्रयत्न मेरे द्वारा किया जायगा। सभी युद्ध, द्वेष, अशान्ति और अनैतिकता इसी परिग्रह पर आधारित है। शान्ति-प्राप्ति का उपाय सीमित ममत्व का परित्याग है। जीवनोपयोगी किसी भी वस्तु पर व्यक्ति-विशेष या देश-विशेष का अधिकार न होकर यदि वह सबके लिए सुलभ हो जाय, व्यक्ति और देश त्याग की ओर बढ़ते हुए दूसरों के लिए उन वस्तुओं को मुक्त कर दे, उनसे अपनापन हटा ले, तो अशान्ति स्वयं हट जायगी।

ममत्व को दूर करने के दो तरीके हैं : ममत्व का परिहार और ममत्व का विस्तार। समत्व की ओर बढ़ने के लिए ममत्व का परिहार तो करना ही होगा। पर यदि हम सीमित ममत्व को हटा कर उसका विस्तार करते हुए समस्त प्राणियों को अपना-अपना ही मान लें, तो उसका परिणाम भी समत्व में ही परिणत होगा। कोई वस्तु हमारी नहीं, सारे समाज की, राष्ट्र की व विश्व की है और हम सब उसीके अंग हैं या जो भी व्यक्ति हैं, वे सब अपने ही हैं, ऐसा मान लेने से विषमता का भाव हट कर अशान्ति के कारण नष्ट हो जायेंगे। "त्याग करते हुए भोग करो," इस उपनिषद्-वाक्य का सन्देश भी यही है कि त्याग का लक्ष्य भुलाया न जाय, भोगों में आसक्ति बढ़ायी न जाय, वस्तुओं व धन के हम ट्रस्टी बन कर रहें। गांधीजी का यही सन्देश था।

जैन धर्म में मुनि-जीवन के लिए असंग्रह जीवन बिताने के बड़े कठोर नियम हैं। कल के भोजन का भी मुनि आज संग्रह करके नहीं रख सकता। रुपये-पैसे का तो स्पर्श भी निषिद्ध है। उच्च जीवन में तो दिगम्बरत्व ही अपनाया जाता है। शरीर के सिवा मयूर-पिच्छी, कमंडलु इन धर्मोपकरण के अतिरिक्त और कोई चीज उसके पास नहीं रहती। भिक्षावृत्ति से आहार ग्रहण करता है, वह भी हाथ में ही। कोई पात्र भी नहीं रखा जाता। उसके बाद स्थविरकल्पी साधुओं के आचार में वस्त्र, पात्र आदि धर्मोपकरणों की कुछ छूट रहती है। गृहस्थ के लिए सर्वसंग या संग्रह का परित्याग सम्भव नहीं, पर उसके लिए भी परिग्रह का परिमाण करना पाँचवाँ अणुव्रत है। अपनी इच्छाओं को सीमित कर लें, उन्हें आवश्यकताओं से अधिक बढ़ने न दें और उनको और भी अधिक सीमित करने के लिए अणुव्रतों के साथ गुणव्रत और शिक्षाव्रत जोड़े गये हैं, जिनसे सुबह से शाम और शाम से सुबह का परिमाण १४ नियमों के द्वारा किया जाता है। जैन मुनियों ने, वस्तुओं पर जो व्यक्ति का ममत्व है, उस ममता को हटाने का बहुत अधिक प्रयत्न किया है। उन्होंने देखा कि एक-एक इंच भूमि के लिए एक ही माता की कोख से जन्मे हुए भाई-भाई परस्पर में लड़ते हैं, राजा आदि अधिपति तो उसे अपनी ही बपौती मानते हुए बड़े-बड़े युद्ध तक करते हैं, जिनमें लाखों व्यक्तियों के प्राणों और लाखों-करोड़ों का धन व वस्तुओं का विनाश होता है, पुत्र पिता को मार डालता है, जल्दी राजगद्दी प्राप्त करने के लिए। इस तरह की विध्वंस-लीला को देख कर उनका हृदय सिहर उठा और उन भूमिपतियों को संबोधन करते हुए उन्होंने जो मंगलमय वाणी प्रसारित की, उसके दो नमूने यहाँ दिये जा रहे हैं। अठारहवीं शताब्दी के कविवर धर्मसिंह ने बहुत ही सुन्दर दृष्टांतों द्वारा "धरती की धणियाप" याने मालकी-पन कैसा, इस को सुन्दर ढंग से प्रचारित किया :

धरती री धणियाप किसी ?

भोगली किते भू किता भोगवसी माँहरी माँहरी करइ मेरें।
अैठी तजि पातला उपरि कूकर मिलि मिलि कलह करैं ॥ १ ॥
धपटी धरणी केतेइ धुँसि धरि अपणाइत केइ धुवै।
धोवा तणी शिला परि धोबी हुँ पति हुँ पति करै हुवै ॥ २ ॥
इण इल किया किता पति आगै, परतिखकिता किता परपूठ।
वसुधा प्रगट दीसती वेश्या झूझै भूप भु जंग सू झूठ ॥ ३ ॥
पातल सिला वैश्या पृथ्वी इण च्यारां री रीति इसी।
ममता करै मरै सो मूरख कहैं 'धर्मसी' धणियाप किसी ॥ ४ ॥

एक दूसरे कवि ने कहा है कि जिस भूमि के लिए तुम इस धन-जन का बेहद संहार करने पर तुले हुए हो, सोचो तो कि इस भूमि को कौन साथ लेकर गया है ? बड़े-बड़े राजाओं ने इसे अपना मान कर महाभारत जैसे युद्ध किये, पर अंत में उन्हें ही जाना पड़ा, पर भूमि तो यहाँ की यहीं पड़ी रही, कोई भी साथ न ले जा सका !

कहो भोम कुण ले गया ?

अेण भोम उपरै राम रावण हिण अडीया।
अेण भोम उपरै षट्चक्र वै रण पडीया।
अेण भोम उपरै गए बांगावळी बारह।
अेण भोम उपरै खपै खोहण अठारैह।
सोळा सांवत सौ सूरिमा दरजोधन सग्रहि दिया।
अेतळा राजा होई गया कहो भोम कुण ले गया ? ॥ १ ॥

इसी तरह समस्त पौद्गलिक पदार्थों को, यावत् शरीर तक की ममता को हटाने के लिए, उन्होंने उनकी विनश्वरता व उनके संग्रह एवं ममत्व द्वारा होने वाली खराबियों के विरुद्ध खूब साहित्य लिखा व प्रचार किया है और संग्रह-वृत्ति से असंग्रह वृत्ति की ओर बढ़ने के लिए प्रेरणादायक संदेश दिया है। ज़रूरत उसके आचरण की ही है ! विश्व की अशांति का मूल यह संग्रह-वृत्ति ही है। इसीके कारण हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार आदि सारे दुर्गुण, वैर-विरोध एवं युद्ध पनपते हैं। इसलिए असंग्रह-वृत्ति की ओर बढ़ना ही परम शांति का मार्ग है।

अलग-अलग धर्म वालों को अपना एक साधारण मोर्चा बनाना चाहिए और निष्ठुरता के खिलाफ, भोग-विलास के खिलाफ, ममत्व-भावना के खिलाफ, मालकियत के खिलाफ खड़ा होना चाहिए। तब कुल की कुल दुनिया एक बड़ा, सुन्दर विश्व-मंदिर बनेगी; विश्व, भगवान् का मंदिर बनेगा। इसलिए इन सब अलग-अलग धर्म वालों को और उपासना वालों को एक होना चाहिए और उनको अपनी-अपनी उपासना के भेदों पर भी जोर नहीं देना चाहिए, बल्कि सब धर्मों में जितना समान अंश है, उन पर जोर देना चाहिए। आज सब धर्मों के सामने बड़ी-बड़ी ताकतें खड़ी हैं। अतः यदि वे आपस में लड़ते रहेंगे, तो अपनी ताकत खोयेंगे और दुनिया में धर्महीनता और नास्तिकता जोर पकड़ेगी। —विनोबा

---

* जैन-ग्रंथों में विश्व के उत्थान और पतन की प्रधानता को लक्ष्य में रखते हुए अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, इन दो नामों से उत्थान व पतन-काल का विभाजन किया गया है। कहा गया है कि उस समय युगलिक काल था; अर्थात् स्त्री और पुरुष युग्म के रूप में साथ ही जन्म लेते, वयस्क होने पर उनमें स्त्री-पुरुष का संबंध होता और फिर युगलिक को जन्म देकर ही वे मर जाते।

www.vinoba.in

स्वर्गीय श्री अण्णासाहब दास्ताने

(लक्ष्मीनारायण भारतीय)

स्वर्गीय अण्णासाहब (वासुदेव विट्ठल) दास्ताने महाराष्ट्र के उन अग्रगण्य नेताओं में से थे, जिन्होंने अपने त्याग, पराक्रम एवं देश-सेवा से महाराष्ट्र की पावन भूमि का सतत सिंचन किया, काँग्रेस के हर संग्राम में वे मोर्चे पर रहे और रचनात्मक काम को महाराष्ट्र में फैलाने में एड़ी-चोटी का पसीना उन्होंने एक कर दिया। इन कामों में श्री शंकररावजी देव एवं श्री अण्णासाहब दास्ताने कंधा से कंधा मिला कर सतत साथ रहे हैं। महाराष्ट्र की राजनीति में एक समय 'देव-दास्ताने' की जोड़ी प्रख्यात ही हो गयी थी!

सन् '२९ में गांधीजी ने असहयोग-आंदोलन शुरू किया और देश को उसके लिए आवाहन किया। जिन वीरों ने उस समय उस आवाहन का स्वीकार किया, उनमें से श्री अण्णासाहब प्रमुख थे। अपनी चलती वकालत ठुकरा कर वे आंदोलन में कूद पड़े और गांधीजी की सेना के एक सेनानी बने। शीघ्र ही उनका सेनापतित्व सार्थक भी हुआ। महाराष्ट्र के सर्वमान्य सेनापति तपस्वी बापट के कंधों से कंधा भिड़ा कर वे 'मुळशी-सत्याग्रह' में जुट गये और बापट-देव-दास्ताने की त्रिमूर्ति ने अहिंसक संग्राम की एक अनोखी मिसाल पेश कर दी। उन्हें इस अवसर पर विदेशी सत्ता से कम यातनाएँ नहीं भुगतनी पड़ीं। इसी तरह वे सन् ३०, ३८, और ४१ में भी अपने बिगड़े स्वास्थ्य के बावजूद विदेशी सत्ता से लोहा लेते रहे और महाराष्ट्र की तेजस्वी परंपरा निभाते रहे।

महाराष्ट्र की प्रदेश काँग्रेस-कमेटी के वे एक उपाध्यक्ष भी थे और वहाँ वे सदा अपने तेज से चमकते रहे। स्व० लोकमान्य तिलकजी के स्थितिवादी अनुयाइयों से उनका विरोध भी आया, क्योंकि स्व० लोकमान्य के अनुयाइयों में दो वर्ग होते जा रहे थे और उनमें से एक गांधीजी की उग्र राजनीति से अलग पड़ता जा रहा था और जो तिलकजी के नाम पर विरोध उपस्थित करता था। उन सबसे मुकाबला करके यह दूसरा वर्ग महाराष्ट्र की भूमि में काँग्रेस की जड़ें जमाने में सफल हुआ, जिसमें प्रमुख थे--श्री दास्ताने, श्री शंकरराव देव आदि। वस्तुतः गांधीजी का जीवन-विचार काँग्रेस की तेजस्वी राजनीति के माध्यम से और रचनात्मक काम के जरिये महाराष्ट्र के अंतर में जो गहरा प्रवेश पा सका, उसका मुख्य श्रेय इन दोनों को ही देना होगा। इस तरह दास्ताने जी सदा अग्रगण्य रहे हैं। देहात में पहली बार होने वाले काँग्रेस-अधिवेशन को फैजपुर में सफल बनाने के लिए जिन महानुभाओं ने तरह-तरह के विरोधी वातावरण के बीच अथक प्रयत्न किये, उनमें से भी एक श्री अण्णासाहब थे।

गांधीजी ने एक ओर जहाँ विदेशी शासन के खिलाफ जंगे-आज़ादी शुरू की, साथ ही दूसरी ओर जनशक्ति का संयोजक रचनात्मक कार्य प्रारंभ कर उसके द्वारा निर्माण की भी नींव डाली। इस तरह एक हाथ में शिवशक्ति एवं दूसरे हाथ में ब्रह्मशक्ति को लेकर गांधीजी ने भारत-भूमि को विश्व की अहिंसक प्रयोगशाला बनायी और विष्णुशक्ति की स्थापना की। उनके इस युग-कार्य में उनके अनुयायी कैसे साथ न देते? महाराष्ट्र के खादीकार्य की धुरा इन लोगों ने अपने कंधे पर उठायी, जिसमें अण्णासाहब प्रमुख थे। महाराष्ट्र, विशेषकर खानदेश उनका मुख्य कार्य-क्षेत्र था। साथ ही हरिजनसेवा में भी वे तन्मय हो गये। इस तरह उधर स्वतंत्रता-संग्राम में, इधर रचनात्मक कामों में वे अगुवा बने रहे और सारा जीवन समर्पित-जीवन बना लिया। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद वे पक्ष की एवं सत्ता की राजनीति से अलग हटते गये और विधायक कार्य में ही लगे रहे। मुख्यतः कुष्ट-रोगियों की सेवा को ही उन्होंने अपना जीवनकार्य बना लिया। स्वयं वे आंशिक रूप से इसके भुक्तभोगी थे, इसलिए उनकी सारी सहानुभूति इन पीड़ितों की ओर मुड़ गयी और अनेक तिरस्कारों एवं दिक्कतों के बीच उन्होंने अपना यह मिशन चालू रखा। जब भूदान-आंदोलन में कूदने की बात आयी, तो फौरन वे आगे बढ़े, लेकिन विनोबा ने उनके स्वास्थ्य के कारण उन्हें रोका एवं उनके आशीर्वाद की ही माँग की!

अंत के दिनों में वे एक छोटे से अपघात के कारण चलने-फिरने में असमर्थ-से हो गये थे। अंत में वे विनोबाजी के परंधाम-आश्रम में अपने एकमात्र पुत्र दत्तोबा के पास आ गये और वहीं उनका शरीरांत उम्र के ७६ वें वर्ष में ता. १ मार्च को हुआ।

श्री अण्णासाहब का सारा परिवार ही त्यागी, देशभक्त और सेवाभावी रहा है। उनकी धर्मपत्नी श्री वारुताई, जो चंद साल पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं, उनके हर कार्य में साथ देती रही हैं। उन्होंने अपने कार्यों से अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व भी बना लिया था, लेकिन अंत तक वे अपना सह-धर्म निभाती रहीं। उनके एकमात्र पुत्र श्री दत्तोबा तो विनोबा के मानस-पुत्र ही हैं, जिन्होंने उनके चरणों में बैठ कर जीवन के अनमोल पाठ लिये और अब वे परंधाम-विद्यापीठ का संचालन कर रहे हैं। उनकी धर्मपत्नी मालूताई भी बालवाड़ी की संचालिका हैं। श्री अण्णासाहब की चार पुत्रियों में से तीनों पुत्रियों का—श्री शरयूताई धोत्रे, श्री बिंदुताई देवधर एवं श्री वत्सलाताई पोतनीस का अपना-अपना व्यक्तित्व है और तीनों ही अपने महान् पिता की उज्ज्वल परंपरा चला रही हैं। इन तीनों के "यजमानों" में से गांधी-सेवा-संघ और गांधीनिधि के मंत्री श्री भाई धोत्रेजी को तो सारा देश जानता है। श्री देवधर खादी-ग्रामोद्योग-विद्यालय, त्र्यंबक के आचार्य हैं एवं श्री पोतनीस एक 'गाँवकरी' नामक मराठी दैनिक के सुयोग्य संपादक। इस तरह अण्णासाहब का संपूर्ण परिवार ही उनके अनुरूप उनके पथ का अनुगामी रहा है!

अण्णासाहब स्वभाव के मृदु, वृत्ति के सात्विक, हृदय के स्नेही और वृत्ति के कर्मठ थे। सिद्धांत-निष्ठा उनकी गहरी थी। सेवा की भावना प्रबल थी। राजनीति में वे सदा उग्रवादी रहे। पुरुषार्थी बने रह कर उन्होंने अपने जीवन का कणकण समष्टि की साधना में व्यतीत किया है। महाराष्ट्र, और उसके द्वारा सारे देश को उन्होंने जो देन दी है, वह इस भूमि की सतह को सदा ऊँची बनाये रखने में सहायक होगी, इसमें सन्देह नहीं।

तमिलनाड़ की क्रांतियात्रा से—

(मीरा व्यास)

श्री डोनाल्ड ग्रूम से बातचीत करते हुए उस रोज बाबा ने कहा: "हम मानते हैं कि हमारे जीवन के हर क्षण का उपयोग होना चाहिए, परंतु 'वेस्ट ऑफ टाईम' कौनसा है, यह सोचने की बात है। कुछ साल पहले मेरे पास बनावटी दाँत थे। उनको साफ करने में मेरे पंद्रह मिनिट जाते थे। जानकी बहन ने मुझसे कहा--'दाँत साफ करने में आपका पंद्रह मिनिट का कीमती समय जाता है, यह अच्छा नहीं है। आप किसी और को भी यह काम सौंप सकते हैं।' उस समय मैंने उनको जवाब दिया था कि हाथ से कोई काम करना वेस्ट ऑफ टाईम (समय की बरबादी) नहीं है। वेस्ट ऑफ टाईम वह है, जिन क्षणों में हमारे मन में काम, क्रोध, मत्सर आदि विकार पैदा होते हैं। जिस क्षण आपके मन में ये विकार उठें, समझ लीजिये कि आपके उतने क्षणों की बरबादी हुई। शुद्ध मन से कोई भी काम करने में समय की बरबादी नहीं है।"

कुल के कारण नहीं, व्यक्ति के कारण गुण होते हैं, यह समझाते हुए स्वामी कुंड्रकुडिजी से बाबा ने कहा: "अगर कुल के कारण गुण होता, तो राक्षस-कुल में मंदोदरी और विभीषण पैदा ही नहीं हो सकते थे। चेतन आत्मा है। अपने अगले जन्म के लिए वही अपने माता-पिता को चुनता है। मान लीजिये कि यहाँ कुछ जमीन है, जिसमें फैट (चरबी) भी है और स्टार्च (सत्व) भी। उसमें आपने ज्वार का दाना बोया, लेकिन वह ज्वार का दाना फैट नहीं लेता है, स्टार्च ही लेता है। पर आपने मूंगफली बोयी, तो वह स्टार्च कम लेती है, फैट ज्यादा लेती है। दोनों की माँ भूमि है। लेकिन एक ने स्टार्च ज्यादा लिया, दूसरे ने फैट। उसी तरह एक माँ-बाप हैं। दोनों बड़े सुन्दर हैं और गणित उत्तम जानते हैं। अब पूर्व जन्म के दो आत्मा चुनाव कर रहे हैं। एक बड़ा गणित-प्रेमी है, लेकिन वह सौंदर्य को चाहनेवाला नहीं है। उसने उस मातापिता को चुन लिया। इसलिए नहीं कि वे सुन्दर थे, बल्कि इसलिए कि वे गणित जानते थे। उसने उन माता-पिता से एक गणित का गुण ले लिया, पर सौन्दर्य नहीं लिया। माता-पिता सुन्दर होते हुए भी वह कुरूप जन्मा। दूसरा जीव सौंदर्य चाहता था, गणित-प्रेमी नहीं था। उसने भी वे माता-पिता चुन लिये, लेकिन वह सुन्दर जन्मा और गणित-विषय में बेवकूफ। इस तरह माता-पिता के कुल गुण बच्चों में आते ही हैं, ऐसा नहीं। बच्चे ने जो गुण चाहा होगा, वैसा गुण उसको मिलेगा। उसका आधार पूर्व-जन्म की चाह पर है।

"हमारे आश्रम में हम सबको प्रार्थना, बुनकाम आदि सिखाते थे। एक लड़के ने प्रार्थना अच्छी तरह सीखी, परंतु बुनकाम सीख नहीं सका। आगे जाकर जब उसने आश्रम छोड़ा, तब से जिन्दगी भर प्रार्थना करता है, लेकिन बुनकाम को छोड़ ही दिया, उसको छूता तक नहीं। दूसरा एक लड़का था, जो आश्रम में बुनकाम भी करता था और प्रार्थना भी करता था, लेकिन आश्रम छोड़ने के बाद आज तक बुनकाम ही करता है, लेकिन प्रार्थना छोड़ दी है। आश्रम में दोनों गुण हैं। जिनको जो चाहिए, उसने वह लिया। इसी तरह राक्षस में वेदाभ्यास का भी गुण है, इसलिए विभीषण ने वह गुण ले लिया और राक्षसी गुण नहीं लिया। जीव अपने लिए चुनाव करता है, इसलिए परमेश्वर उसको उस तरह की गति देता है।"

---

www.vinoba.in

सूचना-संवाद :

जिला-निवेदकों से

सर्व-सेवा-संघ की कोरापुट में हुई प्रबंध-समिति की बैठक में तय किया गया है कि देश के हर जिले के सार्वजनिक कार्य में लगे सौ-डेढ़ सौ प्रमुख व्यक्तियों को, चाहे वे किसी भी पक्ष के हों, व्यक्तिगत रूप से आगामी सर्वोदय-सम्मेलन में आने का निमंत्रण दिया जाय। सभी जिला-"निवेदकों" से प्रार्थना है कि ऐसे लोगों की सूची वे तैयार कर रखें एवं हमारी ओर से ऐसे निमंत्रण-पत्र मिलते ही उन लोगों को भेज दें। जिन लोगों को निमंत्रण-पत्र भेजे जायँ, उनकी सूची, मय पते के हमें भी भेजी जाय। अधिक निमंत्रण-पत्रों की आवश्यकता हो, तो वह भी सूचित करें।

सर्व-सेवा-संघ, खादीग्राम (मुँगेर) —सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री

'ईशावास्य' का अनुवाद-सुधार

कवि श्री सियारामशरणजी गुप्त द्वारा अनूदित "ईशावास्य-उपनिषद" के हिंदी अनुवाद में पहले पद की चौथी पंक्ति है : "तू भोगता जा वह तुझे जो प्राप्त है।" इसके बदले श्री विचित्रनारायणजी शर्मा ने कविवर का ध्यान आकर्षित करते हुए सुझाया कि "तू भोग कर उसका तुझे जो प्राप्त है," यह पंक्ति उपर्युक्त पंक्ति के बदले रखी जाय; क्योंकि "भोगता जा" से 'भोग करने' पर जोर आता है, जब कि जोर आना चाहिए 'त्यक्तेन'='त्याग' पर। 'भोगता जा' से ऐसी भी ध्वनि निकलती है कि कहीं भोग करने से महरूम न रह जायँ !"

कविवर ने अपनी स्वभाविक नम्रता के अनुसार श्री विचित्र भाई को लिखा कि यह तो सब पू. बाबा को अर्पित है, मैं आपका सुझाव उनके पास भेज रहा हूँ। जैसी वे आज्ञा दें। पू. विनोबाजी ने इस पर लिखा :

"अतएव करके त्याग उसके नाम से
तू भोग कर उसका तुझे जो प्राप्त है।
यह विचित्र भाई द्वारा सुझाया हुआ पाठ अधिक अच्छा है।

—विनोबा"

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्री सियारामशरणजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

आशा है, सर्वत्र यह सुधार कर लिया जायगा।

—लक्ष्मीनारायण भारतीय

'ग्रामराज' का प्रकाशन चालू है !

'भूदान-यज्ञ' के ता० १५ मार्च के अंक में हिंदी "साम्ययोग" और "ग्राम-राज" 'बंद होने जा रहे हैं', ऐसी सूचना हमने प्रकाशित की है। 'साम्ययोग' तो बंद हो गया है, लेकिन 'ग्रामराज' के प्रकाशकों से हमें फिर सूचना मिली है कि "पू. विनोबा ने वैसा विचार रखा, परंतु राजस्थान के भूदान-सेवकों और प्रकाशक ने विनोबाजी से दरख्वास्त की कि 'स्थानिक आवश्यकता की दृष्टि से 'ग्रामराज' का प्रकाशन चालू रखने की इजाजत दें।' इस पर विनोबाजी का उत्तर आया कि 'ठीक है, पत्र ज़रूर चले। हर पढ़े-लिखे के हाथ भी पहुँचे। जो हजार की बात करेगा, वह हिंदुस्तान का नहीं, हॉलैंड-डेन्मार्क का नागरिक हो सकता है, ऐसा हमने कई बार कहा है। हमारी भाषा लाख की होनी चाहिए। राजस्थान के लिए कम से कम पाव लाख तो सही।...संपादन अच्छा रहता है। और भी सुधार हो सकता है। बेखटके आगे बढ़ियेगा।'

—संपादक

श्री शंकररावजी का स्वास्थ्य

उपवास-समाप्ति के बाद कुछ दिन श्री शंकररावजी को काफी थकावट रही। भूख भी नहीं लगती थी। सुस्ती रहती थी। पाँचवें दिन से भूख लगने लगी। पेशाब की तकलीफ नारियल का पानी देने के बाद कम हो गयी। पहले आठ दिन सिर्फ नारियल का पानी और संत्रे आदि का रस दिया गया। बाद में छाछ, टमाटर का सूप आदि। नींद अब अच्छी आती है। दिन-ब-दिन तबीयत सुधर रही है। स्वाध्याय करते हैं।

—सुनंदा अत्रे

श्री जयप्रकाशजी की नाग-विदर्भ में क्रांतियात्रा

२८४ लोगों ने भगवान् का जेल स्वीकार किया।

ता० १८ फरवरी से २५ फरवरी तक श्री जयप्रकाशजी का कार्यक्रम नाग-विदर्भ में रखा गया था। १ जनवरी '५७ से नाग-विदर्भ के १२५ कार्यकर्ताओं ने साल भर के लिए गृह-त्याग किया। वे देहातों में घूम कर ग्रामदान, भूदान आदि का प्रचार करते हैं। खासकर एक दिन के वितरण की बात समझाते हैं। सन् '५७ में गाँव में कोई भूमिहीन न रहने देने का संकल्प गाँव वालों से करने की प्रेरणा देते हैं और उसके लिए एक साल की भगवान् की जेल स्वीकार करने का लोगों को आवाहन देते हैं। लेकिन शहरों में और विद्यार्थियों में अब तक हम प्रचार कम ही कर पाये। उस कमी की पूर्ति की दृष्टि से श्री जयप्रकाशजी का कार्यक्रम शहरों और कॉलेजों में ही आयोजित किया गया था।

श्री जयप्रकाशजी आने के पूर्व पूर्व-तैयारी का काम १५ दिन विद्यार्थियों की छोटी-छोटी सभाओं द्वारा हुआ। 'साम्ययोग' मराठी साप्ताहिक का 'भूक्रांति-विशेषांक' प्रकाशित कर उसमें श्री जयप्रकाशजी का विद्यार्थियों को कॉलेज छोड़ने का आवाहन, भगवान् की जेल स्वीकारने वाले वीरों के जीवन के पावन प्रसंग आदि दिये गये। जनता और छात्रों के बीच हजारों की संख्या में ये विशेषांक प्रचारित किये गये। आम सभाओं की पूर्व-तैयारी की गयी। कार्यकर्ताओं के शिविर भी रखे गये।

श्री जयप्रकाशजी के आवाहन पर वर्धा, नागपुर, चांदा, यवतमाळ, अमरावती अकोला से १०० छात्रों ने कॉलेज छोड़ने की घोषणा की। विश्वविद्यालय के उपकुलगुरु और कुछ प्रधान अध्यापकों पर इसका अच्छा असर पड़ा। उन्होंने आश्वासन दिया कि आर्ट सेक्शन के और नॉनप्रैक्टिकल सेक्शन के जो विद्यार्थी इस क्रांति में हिस्सा लेंगे, उन्हें अटेंडन्स (हाज़िरी) माफ होगी और '५८ साल में वे खानगी-रूप से इम्तहान दे सकेंगे, ऐसी हम कार्रवाई करेंगे।"

नागपुर, चांदा, यवतमाळ, अमरावती और अकोला आदि स्थानों में विशाल सभाएँ हुईं। एक लाख लोगों ने भूक्रांति का संदेश सुना। जयप्रकाशजी डेढ़-डेढ़ घंटा विस्तारपूर्वक प्रेरक शब्दों में विचार समझाते थे और जनता मंत्रमुग्ध होकर श्रद्धा और प्रेम से विचार ग्रहण करती थी।

लोगों को उन्होंने यह भी बताया कि चुनाव के बाद मई में विनोबा एक बड़ा संमेलन करनेवाले हैं, जिसमें देश भर के सब राजनैतिक पक्षों के नेता और हर जिले से सौ प्रतिष्ठित लोग बुलाये जायेंगे और वहाँ एक राष्ट्रीय संकल्प लिया जायेगा।

व्यक्तिगत जीवन में शुद्धि और निर्वैर-भावना लाने की उन्होंने कार्यकर्ताओं से अपील की, ग्रामसंकल्प पर जोर देने की सलाह दी और व्यसन-मुक्ति का विचार फैलाने को कहा। उनके आवाहन पर सभाओं में १८४ लोगों ने वर्षदान दिया।

श्री जयप्रकाशजी की यह क्रान्तियात्रा बड़ी लाभप्रद हुई। इस दौरे में साल भर के लिए घर छोड़ने वाले नये २८४ लोग मिले हैं और पुराने १२५ कार्यकर्त्ता भगवान् की जेल स्वीकारने वाले वहाँ थे ही। इनकी ताकत को बटोर कर आगे काम करने की योजना बन रही है। इसलिए कुछ जिलों में जिले भर के ये लोग पूरा समय कुछ दिन तक एक ही टोली में घूम रहे हैं। यह एक चलता-फिरता शिविर है, जिसमें आगे हर देहात में जो काम करना है, उसका प्रशिक्षण उनको दिया जा रहा है। बाद में वे दो-दो की टोलियाँ बना कर अलग-अलग कार्यक्षेत्र निश्चित करके '५७ के अंत तक उसी क्षेत्र में काम करेंगे। ये पूरा समय देने वाले कार्यकर्ता हमारे जलते चिराग रहेंगे, जिनकी रोशनी में आंशिक समयदान देने वाले सैकड़ों कार्यकर्ता काम करेंगे और गाँववाले क्रांति की तैयारी करेंगे। जयप्रकाशजी का कार्यक्रम इसी ढंग से अन्य जगह भी किया गया, तो एक बड़ी ताकत खड़ी होगी। आशा है, सब मित्रगण इस पर गंभीरता से सोचेंगे।

—वसंत बोंबटकर

... 'बोराड़ेवाड़ी' (महाराष्ट्र) में ग्रामदान का निर्णय होते ही ग्रामीणों ने दान-पत्रों की पूजा की, भजन किया और किया यात्रिकों का प्रेमभरा आतिथ्य। "ऐसा जीवित उत्साह इस आंदोलन में मैंने पहली बार ही देखा," ऐसा लोगों ने बताया। देवगढ़ तालुके में जगह-जगह लोगों ने कहलवा दिया था—'विनोबा के आदमी आ रहे हैं, उनकी अव्यवस्था न हो।' नाववालों ने 'विनोबा के आदमियों' से किराया तक नहीं लिया ! एक वृद्ध ने श्री रंगा देशपांडे से कहा, "अरे, तू मेरे पोते के बराबर है और मुझे ही उपदेश देता है ?" उसने कहा, "नहीं दादाजी, आपके आशीर्वाद के लिए ही आया हूँ, विनोबा के विचारों को लेकर !" उन्होंने सर्वस्व-दान ही दे दिया !

---

www.vinoba.in

आगामी सर्वोदय-सम्मेलन :

स्थान—कालडी (आद्य शंकराचार्य का जन्म-स्थान)

स्टेशन—अंगमाली, Angamali for Kaladi

मद्रास-कोचीन–सदर्न रेलवे–लाइन पर (शोरानुर–कोचीन टर्मिनस शाखा)। मद्रास से जलारपेट होते हुए अंगमाली स्टेशन पहुँच सकते हैं। अंगमाली मद्रास से ४०९ और बंगलोर से ३६५ और त्रिचुर से २८ मील पर है। अंगमाली स्टेशन और कालडी के बीच चार मील की पक्की सड़क है। बारिश न हो, तो दो-ढाई मील की पगडंडी का भी उपयोग कर सकते हैं।

सम्मेलन के लिए रेलवे-कन्सेशन

सर्वोदय-सम्मेलन में जाने के लिए रेलवे-कन्सेशन-आधा किराया-सर्टिफिकेट की व्यवस्था की गयी है। जिन्हें जिस स्थान से सुविधा हो, वहाँ से ३) निवास-शुल्क भेज कर प्रवेश-पत्र तथा रेलवे-कन्सेशन-सर्टिफिकेट प्राप्त कर सकते हैं। इस सर्टिफिकेट को अपने क्षेत्र के रेलवे अधिकारी डी. टी. एम. या सी. टी. एम. के यहाँ भेज कर कन्सेशन-ऑर्डर प्राप्त करना होगा, तभी आधा किराया देने पर रिआयती टिकट मिल सकेगा।

सम्मेलन में भोजन की व्यवस्था रहेगी। यदि आप चाहें, तो पैसा देने पर भोजन कर सकेंगे।

(निवास-शुल्क भेजने के लिए स्थान–पते अगले अंक में।)

संमेलन में सत्याग्रही लोक-सेवक-शिविर

निधि-मुक्ति तथा तंत्रमुक्ति के बाद सारे देश में भूदान-आंदोलन में काम करने वाले सत्याग्रही लोक-सेवकों का एक शिविर ११–१२ मई को सर्वोदय-सम्मेलन के बाद होगा, जिसमें विनोबाजी भी रहेंगे। सभी लोक-सेवकों को इस शिविर के लिए निमंत्रित किया जा रहा है। अगर किसी को डाक या अन्य गड़बड़ी के कारण निमंत्रण न मिल सके, तो वे इसीको निमंत्रण मान कर इस शिविर में भाग लेने का कष्ट करें। शिविर के इन दोनों दिनों के भोजन की व्यवस्था संघ की ओर से होगी।

ता. ८ मई से १२ मई तक श्री विनोबाजी कालडी रहेंगे। बाद में कान्नूर होकर १८ जून के करीब मैसूर पहुँचेंगे, ऐसा फिलहाल तय हुआ है।

—सहमंत्री

विनोबाजी का पता : C/o खादी-वस्त्रालय, राजपालयम्
P. O. Rajapalayam (Dist. Ramnad) S. I.

प्रकाशन-समाचार

श्रमभारती-परिवार : बच्चा-बच्चा क्रान्ति के पथ पर—पृष्ठ २४, मूल्य -) २२ फरवरी, '५७ को वार्षिकोत्सव के उपरान्त श्रमभारती के छात्र एवं शिक्षक सन् '५७ के लिए आश्रम छोड़ करके निकल पड़े। उसीका जीवंत वर्णन पुस्तक में है।

व्यवहार-शुद्धि (चतुर्थ संस्करण)—श्रीकृष्णदास जाजू, पृष्ठ ९६, मूल्य ।=)

इस पुस्तक में व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठभूमि तथा विचारधारा स्पष्ट की गयी है। जीवन के सभी व्यवहारों को शुद्ध बनाने में पुस्तक सहायक है।

The ideology of the Charkha (Second Edition)
Shrikrishnadas Jaju, Pages 112, Price 1/

यह खादी और चर्खे के सम्बन्ध में गांधीजी के विचारों को प्रकाश में लाने वाली एवं चर्खे की तात्त्विक मीमांसा जानने के लिए अनूठी पुस्तक है।

एक बनो, नेक बनो—(तृतीय संस्करण) विनोबा पृष्ठ ३२, मूल्य =)

"एक बन जाइये और नेक बन जाइये, फिर आप पर कोई संकट या दुख नहीं आयेगा", विनोबा की यह बात आचरण में लाने के लिए उन्हींके शब्दों में इस पुस्तक में विवेचन किया गया है।

गाँव के लिए आरोग्य-योजना (तृतीय संस्करण) विनोबा पृष्ठ १६, मूल्य =)

युक्ताहार, सफाई, स्नान, संयम और उपलब्ध जड़ी-बूटियों आदि के उपयोग से समुन्नत जीवन बनाने में यह पुस्तक मार्गदर्शक का काम करती है।

—अ. भा. सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी

भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण

उत्तर प्रदेश

श्री बाबा राघवदासजी की अखंड पद यात्राकी प्राप्ति

श्री बाबा राघवदासजी की पदयात्रा १३ अप्रैल '५५ में शुरू हुई थी। १५ मार्च '५७ तक ४९ जिलों की ६३९६ मील की अखंड पदयात्रा हुई। कुल ११७५ दाताओं द्वारा ४३००० एकड़ भूमि, ४६०६४ रु० साधन-दान के लिए और ३५८७३) रु० वार्षिक के संपत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए। अन्य-दानों में २६ कुएँ, २६ बैलजोड़ियाँ, १८४ हल, १३१३ पेड़, ५ मकान, १ पानी का पंप, १ डनलप गाड़ी और ६ समग्र ग्रामदान मिले। पदयात्रा-टोली के साथ अब १४ व्यक्ति रहते हैं, जो साहित्य-प्रचार, भजन-मंडली, अंबर-चरखा प्रचार-आदि काम में लग जाते हैं।

मुरादाबाद जिले की हसनपुर तहसील में सर्वोदय-सेवकों की २६ टोलियों ने ६४८ गाँवों का परिभ्रमण करते हुए १७२५ मील की पदयात्रा की। ९८७ बीघा भूमि १०३ दाताओं द्वारा मिली। १९१) के वार्षिक सम्पत्तिदान-पत्र मिले। ६८ ग्राहक बने। १९०) का सर्वोदय-साहित्य बिका तथा ६०५ बीघा भूमि ४८ भूमिहीन परिवारों में वितरित की गयी।

बनारस तहसील के छह गाँवों में छह ग्रामसेवक अपने-अपने गाँव की जिम्मेदारी लेने को तैयार हुए और विचार-प्रचार के काम में जुट गये हैं। अन्नदान प्राप्त कर चार लोकसेवकों के साल भर भोजन की जिम्मेदारी वे निभायेंगे।

मेरठ जिले की हापुड तहसील में ७ मार्च से १४ मार्च तक करीब २२७ ग्रामों में ७० भाई-बहनों की २२ टोलियों ने सघन पदयात्रा की। कुल ५०० मील की पदयात्रा में १२ बीघा पुख्ता भूमि और ६५) का संपत्तिदान मिला। २० ग्राहक बने। २७ ग्रामसेवक प्राप्त हुए। ४००) की साहित्य-बिक्री हुई। इस सघन-पदयात्रा का तहसील भर में बहुत अच्छा प्रभाव रहा।

आंध्र की प्रगति

आंध्र में ७,१३९ दाताओं द्वारा ७४,५३५ एकड़ भूमि प्राप्त हुई है। २,०६,६११) वार्षिक के १५७६ संपत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए। ७० गाँवों ने ग्रामदान का संकल्प जाहिर किया।

पाकिस्तान की सीमा पर भूदान की गूँज

जोधपुर-जैसलमेर के कार्यकर्ताओं के यात्री-दल ने विकट रेगिस्तानी प्रदेश नाचणा तहसील की सतत दो माह प्रचार-यात्रा की। केवल खारे पानी और आकाश-ग्रहों के सहारे जहाँ आवागमन है, पाकिस्तान में शरण पाये हुए डाकू-दल से त्रस्त और पुलिस-दल से दलित पाकिस्तान-सीमा से सटे इस दुर्गम क्षेत्र की यात्रा का अपूर्व स्वागत होता रहा। करीब ४०० मील की यात्रा में १९० बीघा भूदान, दो संपूर्ण ग्रामदान मिले हैं। और भी 'ग्रामदान' प्राप्त होने के लिए वातावरण वहाँ बन गया है।

विषय-सूची

१. क्रांतितीर्थ कोरापुट और क्रांति की अनोखी प्रक्रिया !	दादा धर्माधिकारी	१
३. स्वर्ग-मर्त्य !	श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	३
३. यह दुनिया को छोड़ने का आंदोलन नहीं है !	विनोबा	४
४. कोरापुट में एक साल का खेती का अनुभव	गोविंद रेड्डी	५
५. ग्रामदान और कल्याण-योजनाएँ !	विनोबा	६
६. विनोबा प्रवचन-सार	—	६
७. पंचामृत	—	७–८
८. संग्रह से असंग्रह की ओर	अगरचंद नाहटा	९
९. स्व० अण्णासाहब दास्ताने	लक्ष्मीनारायण भारतीय	१०
१०. तमिलनाड़ की क्रांतियात्रा से	मीरा व्यास	१०
११. संवाद-सूचनाएँ	—	११
१२. श्री जयप्रकाशजी की नाग-विदर्भ की क्रांतियात्रा	वसन्त बोबटकर	११
१३. भूदान-आंदोलन के बढ़ते चरण, सूचनाएँ आदि	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा सहमंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : राजघाट, काशी

www.vinoba.in